CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

દિ. ૧૨૪૦
૨૨૬૦

૫.૨૪

નેમિ દૂત કાવ્યં

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्ति-संख्या....................

ई

ा (शोध) संस्थान

ार

ाणसी-५

ठ्य..............................

....

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाकवि विक्रम-विरचित

नेमिदूत काव्य

(समश्लोकी हिन्दी-अनुवाद)

मूल : स्व. लक्ष्मण अमरजी भट्ट

संशोधन एवं टीका : श्री भंवरलाल भट्ट 'मधुप'

श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ-प्रकाशन-समिति, इन्दौर

१९७६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

© वी. नि. ग्रं. प्र. स.

नेमिदूत काव्य

समश्लोकी हिन्दी-अनुवाद

मूल : स्व. लक्ष्मण अमरजी भट्ट
टीका : भंवरलाल भट्ट 'मधुप'

प्रकाशक :
श्री वीर नि. ग्र. प्र. समिति,
४८, सीतलामाता बाजार,
इन्दौर–४५२००२, मध्यप्रदेश

मुद्रक :
नई दुनिया प्रेस,
कैसरबाग रोड, इन्दौर–२

प्रथम आवृत्ति,
मई १९७६
वी. नि. सं. २५०२

मूल्य : चार रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशकीय

कविवर मुनि विक्रम की मूल कृति 'नेमिदूत' काव्य को प्रकाश में लाते हुए श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर को विशेष हर्ष इसलिए है कि यह कृति स्वयं में बेजोड़ है और भगवान् महावीर से पूर्व हुए बाईसवें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ के जीवन-प्रसंगों को अत्यन्त मार्मिकता, हृदयस्पर्शिता और जीवन्तता के साथ चित्रित करती है। मूल काव्य संस्कृत भाषा में है और महाकवि कालिदास की अमर काव्यकृति 'मेघदूत' की छन्दसरणि पर लिखा गया है। यदि श्री लक्ष्मण अमरजी भट्ट इसका समश्लोकी हिन्दी-अनुवाद नहीं करते तो हिन्दी-संसार इस अमर कलाकृति के रसास्वादन से वंचित रह जाता। उन्होंने परिश्रमपूर्वक इस अनुवाद को तैयार कर न केवल हिन्दी-जगत् की सेवा की है वरन् दूतकाव्यों की परम्परा में एक और सुनहरी कड़ी जोड़ दी है। समश्लोकी अनुवाद, जिसकी सफल टीका भाई श्री भंवरलाल भट्ट 'मधुप' ने की है, मूल की तरह ही रसपूर्ण और प्रभावी है। लगता है स्व. लक्ष्मण अमरजी ने इसे करते हुए अपनी आत्मा को ही वर्ण-वर्ण में उंड़ेल दिया है। स्वतन्त्रता-संग्राम के कर्त्तव्यनिष्ठ और कर्मठ सेनानी तथा इस समश्लोकी हिन्दी-अनुवाद के संशोधक और टीकाकार भाई श्री 'मधुप' ने इसे साहित्यिक सौष्ठव प्रदान करने में कोई प्रयत्न शेष नहीं रखा है। उनका तखल्लुस 'मधुप' उनकी सारग्राहिणी मेधा का परिचायक है। पता नहीं 'भंवर' को 'मधुप' बनने की क्यों आवश्यकता हुई; वैसे अच्छा ही है कि श्री भट्ट ने अपनी दोहरी रसग्राहिता का लाभ इसे दिया। मधुपजी जैसे अपने दैनंदिन जीवन में सरल, सहज, निश्छल और विनम्र हैं, ठीक वैसे ही वे उनके टीका और संशोधन-कर्म में भी बने रहे हैं। उनकी टीका ने पाठक की अपूर्व सेवा की है, इससे संस्कृत और हिन्दी के बीच का फासला तो कम हुआ ही है, पाठक को मूल काव्य के रसास्वादन में भी एक सुभीता बना है।

स्व. लक्ष्मण अमरजी 'मधुपजी' के पितामह थे। उनके जीवन में और विचारों में कहीं कोई वर्जनाएँ या लक्ष्मणरेखाएँ नहीं थीं। वे उदार थे, आचार में, विचार में,; किसी को कोई चोट पहुँचे या कोई तनिक भी दिया भोगे यह उनकी संवेदनशील प्रकृति को स्वीकार न था; इसीलिए जैनेतर होते हुए भी उन्होंने मुनिवर विक्रम की इस कलाकृति का स्वाध्याय किया और उसमें गहरे पैठकर प्रस्तुत समश्लोकी अनुवाद तैयार किया। वैसे भी अनुवाद एक दुष्कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्य है, दुधारे खांडे पर नंगी पगतलियों से चलना। अनुवाद सभी लोग नहीं कर सकते; सहृदय व्यक्ति ही इस कार्य में कृतकाम होते हैं। स्व. लक्ष्मण अमरजी का यह बहुमूल्य अनुवाद उनके जीवन की सहजता और सहिष्णुता का जीवन्त प्रतिबिम्ब है। यह मर्मस्पर्शी है और एक बार पढ़ जाने पर संपूर्ण जीवन के लिए प्रेरणादायी पाथेय बनने की क्षमता रखता है। नारी-रत्न राजुल के व्यक्तित्व को कवि ने जिस सफलता के साथ प्रस्तुत किया है वह अप्रतिम है।

भगवान् नेमिनाथ जैनों के बाईसवें तीर्थंकर हुए हैं। अब कम-से-कम भगवान् नेमिनाथ, तीर्थंकर पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी के संबन्ध में किसी ऐतिहासिकता को अलग से प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं रही है। विगत दशकों में पूर्व और पश्चिम में जो अनुसंधान-कार्य हुए हैं उनसे अब यह स्पष्ट हो गया है कि भगवान् नेमिनाथ कोई पौराणिक व्यक्ति न होकर इतिहास-पुरुष थे, जिन्होंने भारत की अन्तरात्मा को समृद्ध करने में एक महत्त्व की भूमिका निभायी थी। तीर्थंकर नेमिनाथ करुणा, भगवान् पार्श्वनाथ क्षमा और महावीर स्वामी अहिंसा और अपरिग्रह से हुई जड़मूल क्रान्ति के प्रतीक हैं। जब हम उनके जीवन-प्रसंगों का अध्ययन करते हैं तो उक्त तथ्य स्पष्ट हो जाता है। इन सबने अपने-अपने जमाने में लोकजीवन का परिमार्जन किया और उसे दिशादृष्टि दी। इनके जीवन ही संदेश थे। संदेश के लिए इन्हें अलग से जीना जरूरी नहीं हुआ, वे जीते गये और उनके उस जीने में से आपोआप संदेश संध्वनित होते गये। आज हमारा जीवन निरी बकवास और वाक्चातुर्य रह गया है; जो भी हमारे द्वारा कहा जा रहा है, उसका सहस्रांश भी जीया नहीं जा रहा है। भगवान् नेमिनाथ का कर्तृत्व प्राणिमात्र तक विस्तृत था; राजुलमती के जीवन में भारतीय नारी का समर्पण, उत्सर्ग और त्याग प्रकट हुआ है। उन्होंने तपोधन नेमिनाथ के तप को अखण्ड और अविचल रखा और वे स्वयं अपने व्रत में अडिग बनी रहीं। भारतीय नारी का यह चरम आदर्श उन्होंने अपने जीवन में से आभायित होने दिया है। मुनिवर विक्रम ने राजुलमती के चरित्र को बड़े उत्तम और उदात्त आयाम दिये हैं। इस तरह प्रस्तुत काव्य में जैनदर्शन का तो परोक्ष व्याख्यान हुआ ही है, काव्य के धरातल पर निर्वेद की भी रसपूर्ण अभिव्यंजना हुई है।

मुनिश्री विद्यानन्दजी काव्य के मर्मज्ञ हैं। उन्होंने इस काव्य की पाण्डुलिपि को संपूर्ण देखा है और इसे अपने शुभाशीष प्रदान किये हैं। उनकी प्रेरणा से संस्थापित श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर ने अबतक जो प्रकाशन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किये हैं उनका अखिल देशीय महत्त्व है और न केवल हिन्दी साहित्य में अपितु संपूर्ण भारतीय वाङ्मय में उनकी अपनी स्थिति है। हमें विश्वास है, मुनिश्री विक्रम की इन अमर कृति का, जिसकी सरस टीका भाई श्री मधुपजी ने की है और जिसका समश्लोकी हिन्दी-अनुवाद स्व. लक्ष्मण अमरजी भट्ट ने किया है, हिन्दी-जगत् में समादर होगा और यह समिति के अन्य प्रकाशनों की भाँति ही व्यापक रूप में पढ़ी जाएगी। समिति कृतज्ञ है श्री मधुपजी की कि जिन्होंने हमारा इस उत्कृष्ट कृति से परिचय कराया और समिति को इसके प्रकाशन का सौभाग्य प्रदान किया।

इन्दौर : १ जून, १९७६

—बाबूलाल पाटोदी
मन्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

टीकाकार का वक्तव्य

यों तो प्रस्तुत पुस्तक वि. संवत् १९८६ में ही पूर्ण हो चुकी थी, किन्तु संयोग की बात है कि तपोधन उपाध्याय मुनिवर्य श्री विद्यानन्दजी महाराज के मंगल आशीष से अब कहीं इसके प्रकाशन का सुयोग प्राप्त हुआ है। कविवर मुनि विक्रम के संस्कृत काव्य "नेमिदूत" का यह समश्लोकी हिन्दी-पद्यानुवाद स्व. लक्ष्मणजी ने हिन्दी-जगत् की सेवा एवं अपनी साहित्य-साधना के नाते किया है। वे संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी, पालि, प्राकृत आदि भाषाओं के धुरन्धर विद्वान् और अच्छे कवि थे। सर्वधर्मसमभाव उनका जीवन-व्रत था। साहित्य-देवता की समाराधना में ही उनका सारा जीवन व्यतीत हुआ और इसी नाते जब उन्होंने जैन मुनि विक्रम-विरचित इस काव्य को पढ़ा तब वे इसकी सरसता और इसके रचना-सौष्ठव पर मुग्ध हो गये। कविकुलगुरु कालिदास के चरण-चिह्नों पर चलने के कारण मुनिवर विक्रम के प्रति उनके हृदय में अगाध आदर और अनुराग उत्पन्न हो गया। इस काव्य की अन्य विशेषताओं ने भी उन्हें प्रभावित किया, फलतः उन्हें यह अनिवार्य प्रतीत हुआ कि हिन्दी के पाठकों को भी इस काव्य का रसास्वादन कराया जाए। इसके समश्लोकी अनुवाद का यह भी एक मुख्य हेतु है। इसके अतिरिक्त इसमें सुन्दर और अनूठी कल्पनाएँ, हिंसा पर अहिंसा की विजय का प्रस्तुतीकरण, भोग-परित्याग की विजय का आदर्श और सब के साथ अपने मानसिक समाधान का सुख तो था ही।

इस अनुवाद को हुए अभी तीन वर्ष ही बीत पाये थे कि संवत् १९८९ में मेरे पितामह स्व. लक्ष्मणजी का स्वर्गवास हो गया और यह अनुवाद उनकी हस्तलिखित पोथियों में अप्रकाशित रखा रहा। आर्थिक कठिनाई इसके प्रकाशन में सबसे बड़ी बाधा थी। अन्ततः मुनिवर पूज्य श्री विद्यानन्दजी महाराज ने इसके सुललित पद्यों को सुना और न सिर्फ शुभाशीर्वाद दिया वरन् प्रकाशनार्थ इसे मुझसे ले भी लिया। मैं भाई पाटोदीजी और डॉ. नेमीचन्द जैन को किन शब्दों में धन्यवाद दूं कि जिन्होंने इस पुस्तक को महाराजश्री से प्राप्त करके हिन्दी-संसार और धर्मानुरागी सज्जनों के कर-कमलों तक पहुँचाकर मातृमंदिर की, माँ-भारती की सेवा में सहयोग दिया।

संस्कृत से हिन्दी में समश्लोकी अनुवाद कितना कठिन है, इसे कोई भुक्तभोगी ही जानता है। इसके लिए विशद शब्द-भाण्डार, प्रखर प्रतिभा और कवि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुलभ अचिन्त्य चेतना आवश्यक होती है; फिर भी मूल लेखक के भाव कई बार उसी छन्द की सीमित परिधि में पूर्णतया नहीं आने पाते। भावों की रक्षा, रचना-माधुर्य, रस-प्रवाह आदि का निर्वाह बहुत आवश्यक होता है। प्रस्तुत अनुवाद में इन सबकी पूर्ति का अधिकतम यत्न किया गया है। सच तो यह है कि कोई अनुवादक जब तक मूल लेखक के भावों में तन्मय नहीं हो जाता, वह समश्लोकी अनुवाद में कभी कृतकार्य नहीं हो सकता। मेरे पितामह इस प्रयत्न में कहाँ तक सफल हुए हैं, यह निर्णय मेरे लिए अनुपयुक्त ही होगा; इसका निश्चय तो सुधी पाठक ही करेंगे। मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि जिन दिनों यह अनुवाद किया जा रहा था, उन दिनों मेरे पितामह किसी अनिर्वचनीय आनन्द में विभोर रहते थे। इस अनुवाद को वे बारंबार पढ़ते-सुनाते और सुनते थे। इस प्रकार साहित्य-समाराधन में ही उनका अन्तिम काल व्यतीत हुआ।

संवत १९१४ में उनका जन्म हुआ था, तत्कालीन प्रथानुसार हमारे घर में संस्कृत का बड़ा मान था और वे प्रारंभ से संस्कृत पाठशाला में ही भेजे गये। घर में भी संस्कृत का ही अध्ययन चला। लक्ष्मणजी के पिता अमरजी तो काशी जाकर संस्कृत पढ़े थे। वे स्वनामधन्य विद्वान् थे, पर इनका पितृसुख तीन वर्ष के अल्पकाल में नष्ट हो गया, किन्तु इनकी प्रतिभा ऐसी थी कि वय के साथ उनका काव्यानुराग उत्तरोत्तर विकसित होता गया। उन्होंने संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के साहित्य का भी अध्ययन किया। वृद्धावस्था में तो काव्य-ग्रन्थों का अध्ययन ही उनके काल-यापन का एक मात्र आधार हो गया था। यह पंक्ति उन पर घटित होती थी—

काव्यशास्त्र विनोदेन कालोगच्छति धीमताम्।
व्यसनेषु च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा।

जीवन-संघर्ष में जर्जर उनका हृदय मानो कोई संजीवनी चाहता था और वह उन्हें काव्यानन्द में मिल रही थी। जहाँ जिस भाषा में कोई सूक्ति उन्हें पढ़ने को मिलती, उनका सरस हृदय कमल की भाँति खिल उठता; फिर भी प्रचार-प्रसार की विडम्बना से वे कोसों दूर रहे। यही कारण था कि इतनी असाधारण विद्वत्ता के रहते भी उन्होंने ख्याति अर्जित करने की कभी कल्पना तक नहीं की। सन् १९२१ में असहयोग आन्दोलन के समय बापूजी के अनेक वक्तव्य उन्हें इतने भाये कि उन्होंने उन्हें भी अपने संग्रह में सहेज लिया। उनकी राष्ट्रीय विचारधारा के सिन्धु का एक बिन्दु पाकर ही हमलोग स्वतन्त्रता-संग्राम के सैनिक बन पाये। जैनधर्म पर उनकी आस्था अक्षुण्ण थी। जैनधर्म की छोटी-सी किन्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावपूर्ण पुस्तक 'भक्तामर' को पढ़कर उसके रचना-लालित्य पर वे इतने मुग्ध हुए कि उसका भी उन्होंने हिन्दी में समश्लोकी अनुवाद कर डाला। उक्त अनुवाद भी उनकी मृत्यु के पश्चात् ही प्रकाशित हुआ (धर्मप्रेमी स्व. सेठ हरमुखजी सुसारीवालों ने उक्त अनुवाद प्रकाशित कराया था)।

यह 'नेमिदूत' काव्य अपनी कुछ विशेषताएँ रखता है। इसमें कवि ने महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' को अपना रचना-आदर्श माना है। मेघदूत के प्रत्येक पद्य के चतुर्थ चरण को ही कवि ने अपने 'नेमिदूत' के भी प्रत्येक पद्य का चौथा चरण उद्धृत किया है; किन्तु विशेषता यह है कि प्रत्येक पद्य की तीन पंक्तियां इस प्रकार रची गयी हैं कि उनका भाव मेघदूत की चतुर्थ पंक्ति के भाव से संबद्ध हो गया है। यद्यपि मेघदूत और नेमिदूत दोनों काव्यों के कथानक भिन्न हैं तथापि कविवर विक्रम ने महाकवि कालिदास के आदर्श की प्रत्येक पद्य में समस्यापूर्ति की है और इस प्रकार संपूर्ण काव्य के कथानक का सफलता पूर्वक निभाव किया है। यही कारण है कि अनुवादक ने भी महाकवि कालिदास की पंक्तियों को अपने अनुवाद के पद्यों में अक्षत-अक्षुण्ण रखा है। हिन्दी-पाठकों को इस चतुर्थ पंक्ति के समझने में असुविधा न हो, इसलिए अनुवाद के साथ पद्यार्थ भी दे दिया है; यों काव्य की उपादेयता बढ़ गयी है।

इसे भाई बाबूलाल पाटोदी, डॉ. नेमीचन्द जैन, और श्री वीर निर्वाण-ग्रन्थ प्रकाशन समिति ने प्रकाशित करने का जो अनुग्रह किया है, तदर्थ मैं हृदय से आभारी हूँ। डॉ. प्रकाशचन्द्र भट्ट, अजमेर ने भगवान् नेमिनाथ पर दो शब्द लिखकर जो पुण्यार्जन किया है, वह भी महत्त्वपूर्ण हैं। मुझे विश्वास है उक्त ग्रन्थ-रत्न हिन्दी-संसार के प्रेम, सम्मान और स्वागत का पात्र अवश्य होगा।

सेवासदन,
रामपुरा, मध्यप्रदेश
१ मई, १९७६

—भंवरलाल भट्ट 'मधुप'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करुणा के ज्वलन्त-जीवन्त प्रतीक : भगवान् नेमिनाथ

करुणा के अतल सागर भगवान् नेमिनाथ जैनों के बाईसवें तीर्थंकर हुए हैं। महाभारत-काल में आपका प्रादुर्भाव हुआ। यदुवंश में जन्म लेकर अपनी करुणा की परम पावन धारा से उन्होंने सृष्टि के कण-कण को अभिषिक्त किया। राजनीति के धुरंधर कृष्ण नेमिनाथजी के चचेरे भाई थे। योग-पुरुष कृष्ण ने जहाँ राजनीति की शिक्षा दी, वहां नेमि महाराज ने प्राणिमात्र पर करुणा की शीतल रश्मियां बरसायीं।

नेमिनाथजी के पिता अन्धकवृष्णि के जेठे लड़के समुद्रविजय थे। इन्होंने अपने पुत्र नेमिनाथ का, जो सौन्दर्य और पौरुष के अजेय्य स्वामी थे, विवाह महाराज उग्रसेन की रूपसि-विदुषी कन्या राजुलमती से निश्चित किया। वैभव-प्रदर्शन के उस युग में महाराज कई अतिथियों को बाराती बनाकर पुत्र नेमिनाथ के विवाहार्थ गये। जब बारात वधू के यहाँ गिरिनगर पहुँची तब नेमिनाथ की जिज्ञासा को पशुओं के करुण चीत्कार ने कई गुना बढ़ा दिया। उत्सुकतावश जब उन्होंने पता लगाया तब ज्ञात हुआ कि सारे घिरे हुए पशु बारात के भोजनार्थ लाये गये हैं। इन्हें मारा जाएगा और उनके आमिष से भाँत-भाँत के व्यंजन बारातियों के निमित्त बनाये जाएंगे। यह ज्ञान होते ही मानसिक उद्वेलन से उनके प्राण काँप उठे, उनकी भावना करुणा बनकर अजस्र अश्रुधारा में प्रवाहित हो उठी। लगा जैसे करुणा-सिन्धु में ज्वार आया हो। जिस संसार में अपने भोजन के लिए निरीह पशुओं की बलि दी जाती है, उसकी अमंगलता में कैसा संदेह? निदान, नेमिनाथ ने निश्चय कर लिया और विवाह-बन्धन में बंधने की अपेक्षा इस दुःखमय संसार को छोड़ तपस्या के संकल्प के साथ वे वन की ओर मुड़ गये। कल्पना कीजिए, हल्दी-चढ़ी, मेंहदी-रची विवाह-हेतु प्रस्तुत वधू के रूप और विवाह की असफलता ने राजुल के हृदय में हाहाकार के कितने तूफानों को एक साथ जनमा होगा? अपने प्रिय को पाने की कितनी क्वाँरी कल्पनाएँ उसने अपने आन्तर प्रदेश में संजोयी होंगी; लेकिन सहसा यह हुआ क्या? घूंघट-पट उठने से पूर्व यह कैसा निर्मम पटाक्षेप!!

भारतीय नारी अपने पति का चयन एक बार ही करती है। राजुलमती ने भी पति-स्वरूप नेमिनाथजी को अपने मन-मंदिर में प्रतिष्ठित किया था। अब विवाह का मंगल अनुष्ठान तो समाप्त ही हो गया; उसके स्थान पर राजुलदेवी महारानी और सखियों का करुण क्रन्दन और हा-हाकार चारों ओर छा गया। अन्ततोगत्वा राजुलमती अपने प्रिय की खोज में सखियों के साथ वन-वन घूमीं, किन्तु नेमिनाथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के हृदय में तो वैराग्य का अमर-अकम्प प्रदीप प्रज्वलित हो चुका था, संसार का सारा अन्धकार टूट चुका था ।

एक शुभ दिन वह भी आया जब राजुलदेवी गिरनार पर्वत पर अपने स्वामी के दर्शन में कृतकाम हो गयीं; किन्तु नेमिनाथजी में वर का रूप ही नहीं दीखा उन्हें, उन्हें लगा जैसे लोककल्याण स्वयं कोई आकार लेकर वहाँ आ बैठा है और तपस्या कर रहा है; किसी आत्मानुसन्धान में डूबा हुआ ।…इसके बाद करुणा और अहिंसा के जीवन्त-ज्वलन्त अवतार-पुरुष नेमिनाथ संसार के मोहग्रस्त लोगों को भ्रम की नींद से उठाने लगे…स्वामि-स्नेह में आकण्ठ डूबी राजुल भला अपने पति के आदर्शों में बाधक कैसे बनती, अतः वह साधक बनी; उसने एक सन्निष्ठ प्रेम की चरम सीमा सामने रख दी। राजकुमारी ने भी दीक्षा ले ली, और दोनों ही करुणामूलक जीवन-दर्शन में विदग्ध; भ्रान्त लोगों को शान्ति की डगर दिखाने में लग गये ।

यही कारण है कि भगवान् नेमिनाथ और राजुलदेवी का समग्र जीवन संसार के त्रस्त-संत्रस्त प्राणियों के लिए आज भी एक प्रकाश-स्तम्भ बना हुआ है ।

—डा. प्रकाश भट्ट

अजमेर (राजस्थान)
१ मई, १९७६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नेमिदूत काव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नेमिदूत–काव्य

(१)

मोक्षार्थी हो, स्वजन तज के योग ले नेमिनाथ,
मायाव्यापी सुख तज सभी, उग्रसेनात्मजा भी।
जीवों का वे दुख लख दयायुक्त हो, मुक्त ज्ञानी,
"स्निग्धच्छाया-तरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु।"

(भगवान् नेमिनाथ ने जब जीवधारियों का दुःख देखा, तो वे दया से द्रवित हो गये। सांसारिक बन्धनों से ज्ञानपूर्वक वे मुक्त हुए। माया के कारण भास होने वाले समस्त सुखों का उन्होंने त्याग कर दिया। यहाँ तक कि उग्रसेनात्मजा राजुलदेवी का भी परित्याग करके वे मोक्ष की कामना से शीतल छाया वाले वृक्षों से युक्त गिरनार पर्वत पर आश्रम बनाकर रहने लगे।)

(२)

स्वामी की ये विरति सुनके खोजती राजपुत्री,
आई, देखा--प्रियतम हुए योग में मग्न चित्त।
नासा दृष्टी तप-निरत थे, श्याम अभ्रंकषों से,
"वप्रक्रीड़ा-परिणत-गज-प्रेक्षणीयं ददर्श।"

(राजकन्या राजुलदेवी ने जब सुना कि मेरे पतिदेव वैराग्य लेकर कहीं चले गये हैं, वह उनकी खोज लगाते हुए गिरनार पर्वत पर जा पहुंची। उसने देखा कि प्राणनाथ योगासक्त हैं। एकाग्रभाव से नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि डाले हुए वे तपस्या में लीन हैं। काले-काले बादल शिखर पर छाये हुए हैं मानों किसी किले को गिराने के लिए हाथियों का समूह चढ़ा चला आ रहा है।)

(३)

नाचें केकी जलद उमड़े छा रहे थे कदम्ब,
देखी शोभा गिरि-शिखर की, प्याणप्यारे यती की।
राजुलदेवी सजल नयना हो गई शोकमग्ना,
"कण्ठाश्लेष-प्रणयिनि जने किं पुनर्दूर-संस्थे।"

(उस समय पर्वत पर मोर नाच रहे थे, बादल उमड़ रहे थे, कदम्ब खिले हुए थे। राजुलदेवी ने पर्वत की यह शोभा देखी, किन्तु इसके साथ ही जब अपने प्राणनाथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को यति के रूप में देखा, तो वह शोक में डूब गयी। उसकी आँखों से आँसू की धार वह चली। वर्षा के इस सुहावने काल में जब संयोगी व्यक्ति भी अधीर हो जाते हैं, तो जिसके पति ने वनवास ले रखा हो, उस वियोगी की व्यथा तो अकथनीय ही है।)

(४

देने आया सरित जल का शीत वायु प्रशांति,
शिक्षा देने कुटज-विहरे भृंग मीठे स्वरों में।
साध्वी के श्रीचरण-रज से गूंजता अद्रि-राज,
"प्रीतः प्रीति-प्रमुख-वचनं स्वागतं व्याजहार।"

(उस समय पर्वतीय सरिता के स्पर्श उसे शीत पवन से सान्त्वना देने आ रहा था। कुटज कुसुमों पर विहार करने वाले और भी मधुर-मधुर गुंजन के द्वारा उसे शिक्षा दे रहे थे। राजुल देवी के नूपुरों की जो ध्वनि उस समय पर्वत शिखर पर गूँज रही थी उससे ऐसा प्रतीत होता था, मानों यह पर्वतराज भी अपने मधुर वचनों के द्वारा उसका स्वागत कर रहा है।)

(५)

योगी चाहे गिरिवर समासीन हो सिद्धि पाना,
साध्वी चाहे विनय करना प्राणनाथ प्रणाम।
वार्तार्थी यों गिरि-शिखर को मध्यवर्ती बनाती,
"कामार्त्ता हि प्रकृति-कृपणाश्चेतनाचेतनेषु।"

(भगवान् नेमिनाथ चाहते थे कि पर्वत पर निवास करके सिद्धि प्राप्त करें और वह पतिव्रता चाहती थी कि प्राणनाथ को प्रणाम करे तथा उनसे घर लौटने की विनय करे। रानी ने सोचा कि वार्त्तालाप के लिए पर्वत को ही मध्यस्थ बनाऊँ और बातचीत का प्रारंभ करूँ। पर्वत तो जड़ पदार्थ है। वह भला बातचीत में क्या मध्यस्थता करेगा? परन्तु कामासक्त पुरुष जड़ चेतन का विचार करने में असमर्थ होते हैं। उन्हें चेतन और अचेतन का ज्ञान कहाँ?)

(६)

बोली देवी, यदुकुलपते! श्रीपते! भूपते! हे!
आई हूँ मैं विनय करने, कीजिये पूर्ण काम।
दुःखार्त्ता हूँ, विवश अबला हूँ अधीना तुम्हारी,
"याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा!"

(अंत में कुछ सोच विचार कर रानी ने कहा—हे यदुवंश भूषण, हे शोभा के स्वामी, हे महाराज, मैं आप से कुछ विनय करने उपस्थित हुई हूं। मेरा मनोरथ सफल कीजिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं दुःखों से व्याकुल और विवश हूँ। किन्तु मैं यह विचार करके विनय करती हूँ कि श्रेष्ठ पुरुषों के समक्ष की गई याचना यदि असफल भी हो जाय तो भी अधम व्यक्तियों के समक्ष की गयी प्रार्थना की सफलता से तो वह श्रेष्ठ ही है।)

(७)

प्यारे! त्यागो गिरिशिखर को, श्री पुरी में पधारो,
आभा रत्नोज्वलित भवनों की जहाँ है प्रदीप्त।
शोभाशाली विबुध अलका भी जहाँ है नगण्य,
"बाह्योद्यान - स्थित - हरशिर-श्चन्द्रिका-धौत-हर्म्या।"

(अतएव हे प्रिय! इस पर्वत शिखर को छोड़कर अपनी द्वारिकापुरी में पधारिये। रत्नों की शोभा से उज्ज्वल हमारी द्वारिका इतनी सुन्दर है कि इंद्रपुरी भी उसके आगे तुच्छ है। द्वारिका के उद्यानों में बने भवनों की अट्टालिकाएँ तो चाँदनी से धुलकर अतिसुन्दर और शुभ्र दिखाई देती हैं।)

(८)

देखो वर्षा समय सुख के छा रहे नील मेघ,
विद्युन्माला प्रकट नभ में प्रेम का दान देती।
छाई ज्वाला विरह उर में, प्राण कैसे बचेंगे,
"न स्यादन्योप्यहमिव जनो यः पराधीन-वृत्तिः।"

(हे स्वामी! यह वर्षाकाल उपस्थित है। आकाश में नीले बादल घिर आये हैं। बिजली बारम्बार चमक कर अपने प्यारे बादलों के प्रति प्रेम प्रकट कर रही है। ऐसे समय मैं वियोग की ज्वाला में जल रही हूँ। मेरे ये प्राण अब कैसे बचेंगे। यदि कोई पुरुष मेरी ही तरह पराधीन हो तब तो बात दूसरी है। वह मंदभागी यदि अपने घर न आ सके तो उसका इसमें क्या अपराध?)

(९)

संघर्षों-सा पवन बहता गर्जती मेघमाला,
देखो स्वामी विरहिजन के चीरता कर्ण-रन्ध्र।
रेखाओं में पुलक उड़ती हो यथा शंख-माला,
"सेविष्यन्ते नयन-सुभगं खे भवन्तं बलाकाः"

(वेगवान पवन उथल पुथल मचाता हुआ बह रहा है। बादलों की गर्जना विरहियों के कानों के पर्दे चीर रही है। पंक्ति बाँधकर शंख माला की तरह बगुले पुलकित होकर आकाश में उड़ रहे हैं। हे स्वामी आप चलिये। बक पंक्तियों की यह शोभा आपके नयनों को बड़ी सुखदायिनी होगी।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१०)

काले-काले गगन घिरते देखते बादलों को,
होती प्यारे विरह-व्यथिता विह्वला भ्रान्तचित्ता ।
आंसू पीती प्रणयि-विधुरा कान्ति-हीना लता मैं,
"सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ।"

(हे प्रिय ! आकाश में इन काले-काले बादलों को घिरते देखकर विरहिणी स्त्रियाँ अत्यन्त विकल और भ्रमित हो जाती हैं । मैं श्रीहीन लतिका की भाँति अपने प्रिय के वियोग में आँसू पी रही हूँ । अतएव इस वियोग में व्याकुल मेरा प्रेमपूर्ण हृदय आपके वापस लौटने की आशा से ही जीवित है ।)

(११)

जैसे शैलों पर झुक गिरे रात्रि में श्याम अभ्र,
वैसे छाया उर-सदन में अंजनाकार घोर ।
आओ स्वामी विजन वन में आप हैं शोचनीय,
"सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ।"

(हे स्वामी, रात्रि के समय पर्वतों पर काले-काले घनघोर बादलों के घिर आने से जिस प्रकार निविड़ अंधकार छा जाता है, वैसा ही कज्जल जैसा घोर काला गहन अंधकार मेरे हृदय भवन में भी छाया हुआ है । अतएव आप कृपा करके मेरी विनय मान लें । इस निर्जन वन में आपके रहने से सब चिन्तामग्न हैं । चलिये । देखिये आकाश में उड़ते हुए ये राजहंस भी आपको मार्ग प्रदर्शन करनेमें सहायक होंगे । वे भी साथ-साथ उड़ते चलेंगे ।.)

(१२)

मानो स्वामी विनय इतनी द्वारिका में पधारो,
श्री गोविन्द प्रभृति स्वजनों संग भोगो स्वराज्य ।
छाई आशा सकल जग में प्राण प्यारे तुम्हारी,
"स्नेह व्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम् ।"

(हे स्वामी, मेरी इतनी-सी विनय अवश्य स्वीकार कर लीजिये । द्वारिका चलकर कृष्ण आदि कुटुम्बियों के साथ राज्य-सुख का उपभोग कीजिये । आपके दर्शनार्थ सब लोग उत्सुक हो रहे हैं । स्वजन समूह आपके चिर वियोग से व्यथित होकर उष्ण निःश्वासें छोड़ रहे हैं ।)

(१३)

राजाओं की यह मुनिप्रथा वृद्धता में रही है,
वन्याहारी मुनिव्रत लिए वे हुए हैं व्रतस्थ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्यों स्वामी हैं युवक वय में यों महाकष्ट पाते,
"क्षीण-क्षीण: परिलघु पय: स्रोतसां चोपभुज्य ।"

(हे स्वामी, आज तक की परम्परा तो यह रही है कि, वृद्धावस्था में राजा लोग मुनिवृत्ति लेकर वन में निवास करते रहे । आप इस युवावस्था में इस प्रकार वनवास और मुनिव्रत का कष्ट क्यों पा रहे हैं । आप घर चलिये । आपके आने का सन्देश सब को इतना प्रिय होगा कि उनके कान उसे पी-सा लेंगे । उनकी क्षीणता दूर हो जाएगी ।)

(१४)

उद्यानों की तज रसिकता आप आये यहाँ क्यों,
उन्मादी ज्यों यदुकुलयुवा खेलते हैं अकेले ।
लाये प्यारे ! अमरपति से विष्णु जो पारिजात,
"दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूल-हस्तावलेपान् ।"

(हे स्वामी, द्वारिका के उद्यानों की क्रीड़ाएँ छोड़कर आप यहाँ क्यों आ गये । देखिये, स्वर्ग में इन्द्र को जीतकर भगवान विष्णु जो कल्पवृक्ष लाये हैं, उसकी प्राप्ति से प्रसन्न होकर भी हमारे यदुकुल के युवक आज अकेले ही आपके बिना उदास होकर खेला करते हैं । पर जब आप यहाँ से चलेंगे तो वे आपको पाकर प्रसन्न हो जायेंगे । दिग्गजों का गर्व भी चूर्ण हो जायगा । वे सोचते होंगे कि हम सब से बड़े हैं पर आपको देखकर वे लज्जित हो जायेंगे ।)

(१५)

जैसी आभा तव सुतनु की स्वर्ण भृंगार से थी,
पीड़ाओं में वह नवघनोत्पन्न श्यामालता है ।
नीले रत्नोज्वलित रुचता रंग जैसे हरा हो,
"बर्हेणैव स्फुरित-रुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ।"

(एक दिन वह भी था कि जब आपका शरीर स्वर्णाभरणों से सुशोभित रहता था, परन्तु आज आपके शरीर की वह शोभा वनवास की यातनाओं के कारण वर्षाकाल की नूतन लता के समान नीली हो गयी है । हरे रंग पर जैसे नीले रत्न जड़ दिये हों । आपका श्याम शरीर भी ऐसा ही बन गया है । वह मोर पंखों के संयोग से गोपवेशधारी विष्णु के समान दिखायी दे रहा है ।)

(१६)

प्रासादों से रुचिर नगरी है कहाँ औ अलंघ्य–
शैलों के वे गुरुशिखर हैं–आप हैं काम्यदेही ।
जैसे भी हो विनय सुन लें तापसी वृत्ति त्यागें,
"किञ्चित् पश्चात् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(हे नाथ ! कहाँ तो विशाल भवनों से सुसज्जित हमारी द्वारिका नगरी और कहाँ ये पर्वतों के गुरु, गहन शिखर और तिस पर भी आपका यह कोमल सुन्दर शरीर। क्या आप इन कष्टों को सहन कर सकते हैं ? अतएव हे स्वामी, जैसे बने, वैसे आप मेरी प्रार्थना मानकर यह तपस्वियों का आचरण त्याग दें। यहाँ से मेरे साथ चलने की कृपा करें। हम लोग यहाँ से उत्तर की ओर घूमकर बहुत शीघ्र चलेंगे कि तुरन्त द्वारिका पहुँच जायें।)

(१७)

पान्थों को जो त्वरित गति दे कामिनी से मिलाता,
भौंरों में भी मद भर रहा विश्व का मित्र मेघ।
देखो स्वामी यह शुभ घड़ी अन्यथा हो रही है,
"प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः--किं पुनर्यस्तथोच्चैः।"

(इस ऋतु को देखिये। सारे संसार का कल्याणकारी बादल पथिकों को प्रेरणा देकर उनकी कामिनियों से उन्हें मिला रहा है। मोरों में भी मद उत्पन्न कर रहा है, वे अपनी प्रियतमाओं को रिझाने हेतु नाच रहे हैं। हे स्वामी, यह संयोग की शुभ घड़ी व्यर्थ बीत रही है। कहा है कि मित्र के प्राप्त होने पर उसकी उपेक्षा करने और उसे निराश करने से फिर वही अवसर बारम्बार प्राप्त नहीं होता है।)

(१८)

स्वामी मैंने ललित रस का चारु साहित्य जोड़ा,
आकांक्षा के सुमन कितने स्नेह से हैं संजोए।
आओ प्राणेश्वर गृह चलो यों न प्यारे जलाओ,
"सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु।"

(हे स्वामी, मैंने शृंगार रस की समस्त सामग्री संचित की है। आकांक्षाओं के कितने ही फूल प्रेम से एकत्र किये हैं। हे प्राणनाथ आइए, घर की ओर पधारिये। वियोग की ज्वालाओं में मुझे जलने न दीजिये। महापुरुषों की यह नीति है कि वे सद्-भावों से युक्त होकर किये गये सत्कार्यों पर तुरन्त प्रसन्न होकर फल देते हैं।)

(१९)

शैलों की ये वसति तुमको क्या न देती व्यथा है।
छोड़ा कैसे नगर वर को स्वर्णवप्रस्थिता को।
नीले रत्नों जटित जिसका शृंग है चन्द्र शाला,
"मध्ये श्याम स्तन इव भुवः शेष-विस्तार-पाण्डुः।"

(हे स्वामी, मैं पूछती हूँ कि, पर्वतों का यह निवास क्या आपको कष्ट नहीं देता ? आपने स्वर्ण के कोट-कंगूरों से रचित अपनी सुरम्य नगरी द्वारिका को किस कारण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्याग दिया। कभी आपने सोचा कि हमारा महालय भी कितना सुन्दर है। नीले रत्नों से जड़ा हुआ उसका शिखर और नीचे पीत वर्ण की उसकी अट्टालिका ऐसी जान पड़ती है जैसे मुख पर नील वर्ण और 'नीचे पीले रंग वाले स्तनों का ही वह उपमान हो।)

(२०)

अभ्रों में से बकुल कुल का वृन्द जाता उड़ा है,
हे निर्मोही, इस क्षण सभी पान्थ जाते गृहों को।
विद्युद्दाही स्फुरण जिसमें इन्द्रचाप प्रकाशा,
"भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमंगे गजस्य।"

(जरा इन बादलों की ओर तो दृष्टि डालिये। देखिये, कहीं बक पंक्तियाँ उड़ी चली जा रही हैं, कहीं बिजली चमक रही है और कहीं इन्द्रधनुष प्रकाशित हो रहा है। बादलों में इन सब की शोभा ऐसी जान पड़ती है, मानों किसी गजराज ने भक्तिभाव से प्रेरित होकर शरीर पर विभूति की रेखाएँ अंकित कर रखी हों। हे निर्मोही! इस सुहावने समय में सभी पथिक गण भी अपने-अपने गृहों को जा पहुँचते हैं। आप भी कृपा करके अपने गृह को शोभायमान कीजिये।)

(२१)

लक्ष्मीवान वे मुदित मन हो आपके बन्धुमित्र,
क्रीड़ासक्त स्वपुर रहते सर्व एकत्र हो के।
एकाकी हो, तप-व्रत लिए आप आए यहाँ हैं,
"रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय।"

(देखिये, आपके सभी समृद्धिशाली भाई-बन्धु, मित्र आदि आनन्दपूर्वक नगर में एक साथ रहते हैं, किन्तु आप इसके विपरीत अकेले तपोव्रत होकर यहाँ आ गये हैं। सब के बीच रहने से आपका गौरव बढ़ेगा। इस अकेलेपन से तो लघुता ही सूचित होती है। कहा है न कि पूर्णता गौरव की सूचक है और रिक्तता लघुता की।)

(२२)

स्नेह क्रीड़ावश मृग समाधिस्थ पा पास आते,
जिह्वा से ये शिशु अभय हो चाटते अंग प्यारा।
आगे-आगे गमन क्षण में वे बहा अश्रुधारा,
"सारंगास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम्।"

(प्रेम और विनोद में भरकर वन के हरिण आपके समीप आते हैं, आपको समाधिस्थ पाकर जीभ से आपका अंग चाटते हैं। इतना अनुराग इन पशुओं का आपके प्रति है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब आप चलने के लिए उद्यत होंगे तो हे स्वामी ये हरिण शिशु आगे-आगे अश्रुधारा बहाते चलेंगे और इस प्रकार आपका मार्ग प्रदर्शन करेंगे।)

(२३)

शैलों के ये शिखर तज के राज्य से प्रीति जोड़ें,
जोड़ें पूर्ण प्रणय-पट को बंधु वर्गादिकों से।
प्रासादों में अनुभव करें भोग हैं प्राप्य सारे,
"सोत्कंठानि प्रिय-सहचरी-संभ्रमालिंगितानि।"

(हे स्वामी, आप पर्वत के इस शिखर का त्याग कर अपने राजकार्य की ओर प्रवृत्त हों। भाई, बन्धु-कुटुम्बी आदि के प्रति अपने स्नेह-सम्बन्ध का निर्वाह करें। महलों में चलें। वहाँ भोग के समस्त साधन उपलब्ध हैं। आपकी प्रियतमा आप से मिलने के हेतु उत्कंठित हैं।)

(२४)

झूले फूले परिमल बहे अर्जुनों में हवा से,
उत्कण्ठा से पथिक दल भी जा रहा धाम को है।
ये बातें हैं हृदय हरतीं चित्त को बेधती हैं,
"प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत्।"

(अर्जुन वृक्षों में फूल खिल रहे हैं। वायु से उनका परिमल चारों ओर फैल रहा है। इस शुभ अवसर पर सभी पथिक अपने-अपने घर की ओर लौट रहे हैं। मैं जब इन दृश्यों को देखते हुए अपनी स्थिति पर विचार करती हूँ तो मेरे हृदय में बड़ी पीड़ा होती है। अतएव मेरी विनय है कि स्वामी आप किसी भी प्रकार वापस लौट चलने की कृपा कीजिये।)

(२५)

उत्कण्ठा से यदि न तुमको लौटना इष्ट होगा,
देखो मेरी विधुर स्थिति को वृद्ध माता-पिता को।
प्राणों में है अनल जलता देह होती विशीर्ण,
"सम्पत्स्यन्ते कतिपय-दिन-स्थायि-हंसा दशार्णाः।"

(यदि उत्कण्ठापूर्वक आप द्वारिका की ओर लौटना न चाहते हों तो भी जरा मेरी विरहपूर्ण दशा और माता-पिता की वृद्धता का विचार कीजिये। मेरे प्राणों में आग जल रही है। यह सोचकर आप विनय स्वीकार कर लीजिये। चलते समय मार्ग में हमें दशार्ण देश मिलेगा। आप देखेंगे कि हमारे साथ चलने वाले हंस भी वहाँ कुछ काल विश्राम करके फिर आगे बढ़ेंगे।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२६)

तो-प्राणों की जलन हर लो, जीव रक्षा न भूलो,
आओ स्वामी, त्रिदश रचिता द्वारिका निर्व्यथा हो।
वे प्रान्तों के निकट उठतीं सिन्धु की जो तरंगें,
"स-भ्रूभंगं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि।"

(अतएव हे स्वामी यदि आप जीव रक्षा के निमित्त ही यह तप कर रहे हैं तो मैं भी तो एक जीव हूँ। मेरे प्राणों की रक्षा भी तो आपका कर्त्तव्य है। उसे भी तो आपको बचाना है। तीस कोटि देवों द्वारा रचित द्वारिका की व्यथा को दूर करना भी आपका दायित्व है, अतएव आप मेरी विनय को स्वीकार कीजिये। जब चलेंगे तो मार्ग में हमें वेत्रवती नदी मिलेगी। तट पर उसकी ऊँची-ऊँची लहरें उठ रहीं होंगी। उसका जल बहुत मीठा है। आप जब उस चंचल तरंग वाले जल को भ्रूभंग युक्त मुख के अधर पान के सदृश पीयेंगे तो सच मानिये, आप निज को कृतकृत्य अनुभव करेंगे।)

(२७)

स्वामी नीचे गिरि शिखर के मुक्त आसन्न भू है,
क्रीड़ा शैल प्रथित सुखमा रत्न से मंडिता है।
दैत्यों को भी विजय करके खेलता राजवंश,
"उद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि।"

(हे स्वामी नीचे गिरिशिखर के आगे बढ़ने पर खुला मैदान मिलेगा जिसमें रत्नों से जड़े बहुत सुन्दर क्रीड़ा शैल बने हैं। आपके राजवंश के युवक, दैत्यों को जीतकर उन पर नाना प्रकार के खेल किया करते हैं। वहाँ सुन्दर शिलावेश्म हैं, जिनमें अंगराग की सुगन्ध छायी रहती है क्योंकि वे भी वहाँ क्रीड़ा करने आया करती हैं।)

(२८)

उद्यानों में क्षणिक रुकता श्रान्त विश्रान्ति पाता,
प्यासी आँखें क्षण मुदित हो चारु गंधादिकों से।
जही के हैं कुसुम चुनः के सुप्रसन्न स्मितों से,
"छायादानात् क्षण परिचिता पुष्पलावी मुखानाम्।"

(आगे फूलबाग जो आयेंगे, उनमें आप क्षण भर विश्राम करके अपनी थकावट मिटा लेना। उन उद्यानों के सुगन्धित पुष्पों की गन्ध से आपका मन प्रसन्न हो जायगा। चमेली के फूल चुनने वाली मुस्कराती मालिनों की तृषित आँखें देखकर आप क्षण भर के लिए प्रसन्न हो जायेंगे। उन मालिनों पर आप अपनी करुणा की छाया कीजिये। उनका क्षण परिचय भी आपको सुख देगा।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२९)

उद्यानों में स्तन सुनमिता योषिताएँ लता-सी,
लीला लोला, चयल नयना, काम क्रीड़ा कली-सी।
कर्णान्तों के कमल अलि की गूंज से मुस्कराते,
"लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वंचितोऽसि।"

(उन बगीचों में जो मालिनें हैं, वे स्तनों के भार से नमी हुई होने के कारण ऐसी दिखायी देंगी जैसे फूलों के गुच्छों से नमी हुई लताएँ। चंचल आँखों वाली ये रसिकाएँ बड़ी चपल और क्रीड़ाशील हैं। काम-कलामें कुशल। उनके कानों पर जो कमल के फूल लगे हैं, वे भौंरों की गूंज से खिलते हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानों वे भी आनन्द में मुस्करा रहे हों। यदि आपने एक कटाक्ष पात करके उनके सौन्दर्य का आनन्द नहीं लिया तो मैं कहूँगी कि नेत्रों की प्राप्ति ही व्यर्थ है।)

(३०)

उद्यानों में मृगनयनियाँ उच्च शाखा झुकाये,
कांची रेखा, कुच त्रिबलि की रूपमाला लिये हैं।
भ्रू भंगों से सुमुख तुमको ये रिझाने खड़ी हैं,
"स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।"

(इन उद्यानों में मृगनयनी मालिनें वृक्षों की ऊँची टहनियों को झुकाने के बहाने अपना स्वरूप प्रदर्शन करती दिखायी देंगी। कटि की करधनी, उदर पर पड़ी सुन्दर त्रिवली की रेखाएँ और उन्नत उरोज दिखाकर वे कोमल कटाक्ष के द्वारा हे सुमुख। आपको रिझाने के लिए खड़ी होंगी। क्योंकि बहुधा नायिकाएँ अपने प्रेमियों को रिझाने के लिए प्रथम इसी प्रणय भाषा का इस्तेमाल करती हैं।

(३१)

स्वामी मेरी विनय सुन लो, साधु का वेश त्यागो,
माता की भी स्मृति कुछ करो, जो प्रतीक्षा रता है।
वृद्धा हैं वे सजल नयना त्यक्त आहार निद्रा,
"कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः।"

(अतएव हे स्वामी, अब आप मेरी प्रार्थना को ठुकराइये नहीं। यह साधुवेश छोड़ दीजिये। अपनी उस माता की ओर भी आपको देखना होगा जो आपके आगमन की प्रतीक्षा में जीवित हैं। वे कितनी वृद्ध हैं। दिन रात आंसू बहाती रहती हैं। उनकी नींद और भोजन दोनों छूट गये हैं। यह दयनीय दशा आपके शुभागमन ही मिट सकती है, अन्यथा नहीं।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३२)

नीचे धारा विषम पुलिना स्वर्ण रेखा दिखाती,
मार्गों में है बलि नृपति की राजधानी सुरम्या।
देवों के भी प्रचुर सुख का स्रोत मानों बनी है,
"शेषैर्पुण्यैर्हृतमिव दिवः कांतिमत्खण्डमेकं।"

(चलते समय राह में हमें स्वर्ण की रेखा के समान ऊँचे-नीचे तट वाली नदी (क्षिप्रा) मिलेगी, जिसके तट पर बसी हुई राजधानी (अवन्तिका) बड़ी मनोहर है। देवताओं के भी महान आनन्द का वह मानों उद्गम है। ऐसा जान पड़ता है कि अपने पुण्य के प्रभाव से चिरकाल तक स्वर्ग का सुखोपभोग करने के अनंतर बचे हुए पुण्य के प्रताप से पुण्यात्मा पुरुष स्वर्ग के ही एक कान्तिमान खण्ड को उज्जयिनी के रूप में पृथ्वी पर उतार लाये हैं।)

(३३)

शीतस्पर्शी पवन बहता है अवन्ती समीप,
कान्ताओं के सुरतगृह में रम्यता ला रहा जो।
झीनी देहों पर सुरत के जो जमे स्वेद बिन्दु,
"शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थना-चाटुकारः।"

(अवन्तिका के समीप क्षिप्रा जल से शीत होकर बहने वाला पवन वहाँ की रमणियों के शृंगार गृहों में सुन्दरता उत्पन्न कर देता है। वह पवन प्रेमियों के समान ही बड़ा चतुर है। अंगनाओं की क्षीण देहों पर उत्पन्न हुए श्रमजनित पसीने की बूंदों को वह सुखा देता है। मानों अपने मंद-मंद झोकों से वह भी प्रियतम की तरह अनुनय विनय कर रहा हो।)

(३४)

खम्भों में हैं मरकत जड़े, देहली में प्रवाल,
प्रासादों के शिखर पर हैं रत्न माणिक्य नाना।
मुक्ताओं से रचित धरणी, वेदियां शोभनीया,
"संलक्ष्यन्ते सलिल-निधय-स्तोयमात्रावशिष्टाः।"

(उज्जयिनी अति सुन्दर नगरी है। उसके विशाल भवनों के खंभे मरकत मणियों से जड़े हैं। ड्यौढियाँ प्रवाल मणि से और महलों के ऊपरी भाग रंग-विरंगे रत्नों से स्वचित हैं। फर्श मोतियों की पंचीकारी करके बनाए गए हैं। कितना मनोरम लगता होगा वह दृश्य। नागरिकों की बैठकें भी इसी प्रकार शोभनीय हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्रों की सम्पूर्ण रत्न राशि यहाँ संग्रहीत हो गई। समुद्रों में तो अब केवल जल ही शेष रह गया है।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३५)

मोक्षार्थी वे मुनिजन जहाँ कामनासक्त होते,
पाते आए भुवन विजयी सिद्धि का मुक्त द्वार ।
दानार्थी हो बलि नृपति को लोक पाताल भेजा,
"इत्यागन्तून् रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः ।"

(मोक्ष की इच्छा वाले मुनि जब इच्छाओं के वशीभूत होकर सांसारिक भावनाओं में लीन हो जाते हैं, तब यही नगरी उन्हें सन्मार्ग पर आरूढ़ करती है। वे यहाँ आते और सिद्धि का मार्ग प्राप्त करते हैं । यहीं के राजा बलि को भगवान विष्णु ने दानार्थी बनकर छलपूर्वक पाताल भेजा था । आज भी दूर-दूर से आए हुए यात्रियों को यह कथा वहाँ के वृद्ध पुरुषों के मुख से सुनने को मिलती है।)

(३६)

प्रासादों से सुमुख तुमको पौर पूजोपचार,
लावेंगे वे, नगर भर के लीजिए भेंट पूजा ।
माणिक्यों से रचित गृह में नाथ विश्रान्ति पाना,
"नीत्वा खेदं ललित-वनिता-राग-पादांकितेषु ।"

(हे सुमुख ! जब नगरवासी आपके शुभागमन का वृत्तान्त सुनेंगे तो वे आपका पूजन करने हेतु अपने-अपने घरों से सब सामग्री लेकर उपस्थित होंगें । उनकी भेंट आप स्वीकार करना। मणियों से सुसज्जित गृह में आप विश्राम कीजियेगा। वहाँ सुन्दरियों के अलक्तक चर्चित चरण चिन्हों को देखकर आपकी सारी थकावट दूर हो जायेगी ।

(३७)

उद्यानों के निकट स्थल में उज्जयन्ती समीप,
फूली फैली ललित लतिका मालती कम्पिता हो ।
सायं प्रातः श्रम जल मिटा आपको शान्ति देगी,
"तोय - क्रीड़ा - निरत-युवति-स्नानतिक्तैर्मरुद्भिः ।"

(उज्जैन के समीप सुन्दर उद्यान लगे हुए हैं। उनमें मालती की लताएँ फैल रही हैं। सांझ सबेरे वायु के वेग से कम्पित होकर वे त्रिविध पवन के झोंके दिया करती हैं। ये लताएँ आपकी प्रसन्नता का कारण होंगी। सरोवरों में स्नान के समय युवतियों की क्रीड़ा से जो शीत वायु बहेगा वह भी आपकी श्रन्ति दूर करेगा।)

(३८)

प्रासादों की प्रथित महिमा देव भी देखते हैं,
मेघों के से गहन स्वर में भेरियाँ गूंजती हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सद्वाद्यों का मधु स्वर सुनें आप आनन्द पायें,
"आमन्द्राणां फल-मविकलं लप्स्यसे गर्जितानां।"

(उज्जयिनी के विशाल भवन इतने सुन्दर हैं कि, स्वर्ग के सदनों में रहने वाले देवता भी उनकी शोभा देखकर लालायित होते हैं। वहाँ बादलों की गंभीर ध्वनि में नक्कारों की गूँज उठा करती है। इन सब प्रकार की मंद मधुर ध्वनियों को सुनकर आपको अनायास ही अत्यन्त आनन्द प्राप्त होगा।)

(३९)

शोभाशीला नगर-वनिता प्रेम की पुत्तली सी,
तन्वंगी वे पथ विचरतीं मोहतीं चित्त को हैं।
नीले कंजों सम रसवती शोभना लालसांगी,
"आमोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकर-श्रेणि-दीर्घान्कटाक्षान्।"

(इस नगर की सुन्दर नर्तकियाँ प्रेम की मूर्त्ति के समान हैं। वे कृश कटि होने से अति सुन्दर हैं। वे राह चलती हुई मन को मोह लेती हैं। नीले कमलों के समान वे कोमल शोभनीय और सौन्दर्य की खानि हैं। वे काले-काले भौंरों की पंक्ति के समान दीर्घ कटाक्षों से आपको देखेंगी।)

(४०)

ऊँचे-ऊँचे सदन सजते दीपकों से निशा में,
उत्साहों से सुरभित सजे रत्न की ले शिखाएँ।
शोभाशाली द्युति विलसती स्वर्ग गंगा समान,
"शान्तोद्वेग-स्तिमित नयनं दृष्ट-भक्तिर्भवान्या।"

(रात के समय इस नगर के ऊँचे-ऊँचे भवन रत्नदीपों से बहुत सुन्दर दिखायी देते हैं। उत्साह के समान प्रकाशमान उनकी रत्नप्रभा से सुगन्ध निकलती रहती है। ऊँची खिड़कियों से निकलने वाली उनकी प्रकाश-रेखाएँ आकाश गंगा के समान शोभा देती हैं। इस दृश्य को आप अपलक देखते रहेंगे? आपका समस्त उद्वेग नष्ट हो जायगा। आपके नेत्रों को यह कितना अलभ्य-लाभ होगा?)

(४१)

प्यारे लाई सुखद रथ मैं आप आवें-विराजें,
भक्ति श्रद्धायुत युवतियाँ देख के धन्य होंगी।
जाते-जाते रथ ध्वनि सुनें मेघ की भ्रांति होगी,
"तोयोत्सर्गस्तनित-मुखरो मास्म भूर्विक्लवास्ताः।"

(हे प्रिय, मैं आपके लिए सुखदायक रथ लेकर आयी हूँ। आप अब उठिये, उसमें विराजिये। राह में जो युवतियाँ आपको देखेंगी, वे भक्ति और श्रद्धा में भरकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने को धन्य मानेंगी। जब वे हमारे रथ की ध्वनि सुनेंगी, तो उन्हें ऐसा लगेगा, मानों बादल गरज रहे हैं। उस समय आप रथ की गति को मन्द कर दीजिये कि उन्हें बादल गरजने और पानी बरसने की भ्रान्ति से विकलता न हो।)

(४२)

दिव्यार्थी हो यदुवर सभी आएंगे स्वागतार्थ,
उत्कण्ठा में तव पितृसखा प्रेम पुष्पाञ्जली ले।
आजावेंगे सहचर सभी वाद्य घोषादि युक्त,
"मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थ-कृत्याः।"

(हे स्वामी, जब हम अपने नगर में प्रवेश करेंगे तब आपके शुभाशीर्वाद देने की कामनाएँ लेकर सभी रघुवंशी स्वागत करने आयेंगे। आपके पिताजी के मित्र भी प्रेम के पुष्पों की अञ्जलियाँ लेकर उत्कण्ठापूर्वक आ पहुँचेंगे। आपके मित्रजन, गाजे-बाजे के साथ आयेंगे। उस समय आप अपने कहे जाने वाले इन व्यक्तियों की इच्छाओं पर आघात न होने दीजिये। उन्हें सफल कीजिये।)

(४३)

ऊँचे-ऊँचे जल शिखर से व्याप्त प्यारी पुरी में,
आते होंगे विनय नत हो भेंट देने अमात्य।
सत्पात्रों की सफल कृति-सा दिव्य प्रेमोपहार,
"प्रत्यावृत्तस्त्वयि कर-रुधिस्यादनल्पाभ्यसूयः।"

(हमारी द्वारिका कितनी सुन्दर है। उसके चारों ओर पानी की ऊँचीं-ऊँची लहरें उठा करती हैं। इस सुन्दर नगरी में मंत्रिगण भी आपको भेंट देने के लिए नम्र भाव से आते दिखायी देंगे। सत्पुरुषों के शुभ कार्यों के समान उन उपहारों को स्वीकार करके आप सब को सफल कीजिये। इससे उनको बड़ा समाधान होगा। यदि अकारण ही कभी किसी को किसी से कष्ट पहुँच जाय तो उसका प्रतीकार करना ही सज्जनों का कर्त्तव्य है।)

(४४)

फेनों वाला अनुतट पयोराशि का शुभ्रवारि,
मत्स्योल्लास भ्रमयुत हरे काँच सा दिव्य धाम।
निर्बन्धों सा लहर-कर ले पैर धोने बढ़ेगा,
"मोघीकर्त्तुं चटुक-शफरोद्वर्तन-प्रेक्षितानि।"

(हे स्वामी, हमारी द्वारिका के तट पर समुद्र का निर्मल जल बारंवार लहरें लेकर आता है। उसमें फेन उठकर तैरते रहते हैं। मछलियों की उछल-कूद नीलकाँच प्रतिम जल की शोभा सब बड़ी सुखद है। यह सागर आपके चरण पसारने को आगे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बढ़ेगा। उस समय पानी में उछलने वाली चंचल मछलियाँ ऐसी जान पड़ेंगी, जैसे वह तिरछी चितवन से आपको देख रहा है।)

(४५)

बेलांकों में विमल सलिला आ रही निम्नगा है,
देखो प्यारे उदधि उससे ले तरंगें मिलेगा।
उन्मेषों में स्मित, अधर से प्रेम का दान देगा,
"ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः।"

(समुद्र के तट पर निर्मल जल वाली जो नदी बहती आ रही है, हे प्यारे, आप देखेंगे कि सागर अपनी प्रिया से तरंग रूपी भुजायें पसारकर कितने प्रेम से मिलने के लिए उत्सुक है। मछलियों के रूप के कटाक्ष द्वारा वह अपनी मन्द मुस्कराहट प्रकट करेगा। लहरों के रूप में अधरों से अपनी प्रियतमा का चुम्बन करेगा। सच है ऐसे प्रबल प्रेम के रस को छोड़ने में कौन समर्थ है?)

(४६)

ऊँचे-ऊँचे लहर कर से सीकरों को उड़ाती,
वेला-भू की सुरभिसुखदा केतकी गंधहर्ता।
यात्राजन्य श्रम कण सखे आपके जो हरेगी,
"शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम्।"

(किनारे पर केतकी के पौधे लगे हैं। उनके फूलों की सुगन्ध लेकर जो हवा बहती है, वह ऊँची-ऊँची लहरों से फुहारें भरकर आती है। आप जब वहाँ पहुँचेंगे तो यात्रा के कारण उत्पन्न हुई आपकी सारी थकान उस शीतल, मन्द सुगन्ध वायु के कारण दूर हो जायेगी। गूलर के फलों को परिपक्व करने वाली प्यारी वायु मार्ग में आपकी सेवा करेगी।)

(४७)

आगे स्वामी चलकर तुम्हें नाम का रत्नखान,
ज्वाला वाला भुवन भयकृत् विश्वदाही मिलेगा।
पानी से भी दुसह उपजा है यथा कालकूट,
"अत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धितेजः।"

(हे स्वामी, आगे बढ़ने पर आपको रत्नखान पर्वत मिलेगा। नाम तो उसका रत्नखान है, पर है वह सारे संसार को जला देने में समर्थ। ब्रह्माण्ड को कम्पित कर देने वाली ज्वालाओं का पुंज। उसकी उत्पत्ति यद्यपि समुद्र से हुई है, पर वह समुद्र से निकला हुआ कालकूट विष। सूर्य से भी अधिक तेजस्वी। जिस तेज को शंकर ने अग्नि के मुख में डाला था, वैसा ही वह पर्वत है।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४८)

प्यारे केकी रथध्वनि सुनें मेघ की भ्रांति मानें,
श्रद्धा वाले मधुर रव से स्तोत्र मानों कहेंगे ।
स्वामी होंगे मुदित मन वे नृत्य की लालसा में,
"पश्चादद्रिग्रहण-गुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः ।"

(हे प्रियतम, हमारे रथ की गंभीर ध्वनि सुनकर मोर बड़े प्रसन्न होंगे, वे समझेंगे कि वादल गरज रहे हैं। वे श्रद्धायुक्त होकर मीठे वचनों से आपकी स्तुति करने लगेंगे। यही नहीं, वे सुप्रसन्न होकर नृत्य भी करने लगेंगे । आप भी उस समय रथ-ध्वनि वढ़ाकर उन्हें खूब नचाइयेगा ।)

(४९)

आगे भद्रा विशद बहती अंक बिस्तारती सी,
धीरे-धीरे गजगति लिए श्रांत सी जा रही है ।
वातोत्कंपी विधु किरण में उर्मिका हास्य धारे, ।
"स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणता रंतिदेवस्य कीर्तिः ।"

(आगे भद्रा नदी वहती हुई दिखाई देगी । उसका पाट बहुत चौड़ा है। मानों उसने अपनी गोद को सुविस्तृत कर रखा है। उसका प्रवाह मंद है मानों वह दूर से चलकर आने के कारण थक गई है। रात को उसकी लहरों पर चन्द्रमा की किरणें रन्तिदेव पड़ती हैं। वे ऐसी प्रतीत होती हैं, मानों वह हँस रही है। यह भद्रा पृथ्वी पर राजा रन्तिदेव की मूर्त्तिमती कीर्ति ही है जो इस प्रकार नदी का रूप धारण किए हुए जा रही है।

(५०)

देखो स्वामी उदधि जल में हार मानों गिरा है,
ऊँचे से जो जल सरित का आपके क्रीड़नार्थ ।
देखेंगे वे सुर अनिमिष व्योम से दृष्टि डाले,
"एकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलं ।"

(हे स्वामी, इससे आगे बढ़ने पर जो सरोवर मिलेगा, वह विशेष कर आपके क्रीड़ा हेतु ही है । उसमें जो झरना आकर गिरता है, वह ऐसा प्रतीत होता है, मानों समुद्र में चाँदी का हार गिर रहा है। जब आप उस सरोवर में स्नानार्थ उतरेंगे, तो स्वर्ग के देवता आपको देखकर सोचेंगे कि चाँदी के उस सफेद हार के बीचों बीच इन्द्रनील मणि लगा हुआ है ।)

(५१)

आजावेगी उतर सरिता ईश नामा पुरी है,
देशान्तों से बहुजन जहाँ प्राप्त वाणिज्य हेतु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्योमस्पर्शी शुभ-सदन को देखना रम्यता को,
"पात्री-कुर्वन्दशपुर-वधू-नेत्र-कौतूहलानाम् ।"

(हे स्वामी, इस नदी को पार करने के बाद राजा रंतिदेव की राजधानी दशपुर मिलेगी, जहाँ देशान्तरों के अनेक व्यापारी वाणिज्य हेतु रहा करते हैं। उस नगर के महल इतने ऊँचे हैं कि मानों आकाश को छूते हैं। उनकी शोभा आप देखियेगा। वहाँ की स्त्रियाँ कटाक्षपात करने में परम कुशल हैं आप उनके नेत्र कौतूहल का आनन्द लीजिये। उन्हें दर्शन दीजिये। वे आपके दर्शनों की सर्वथा पात्र हैं।)

(५२)

देखो आगे नव तृण जमा पंक से म्लान दुर्ग,
मेघों द्वारा विमल सर की क्षीण आभा हुई है।
संग्रामों में विफल बनते हों यथा संविधान,
"धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यर्षिचन्मुखानि।"

(हे स्वामी, आ बढ़ने पर हमें एक अति प्राचीन दुर्ग मिलेगा, पर उसके अंतः प्रदेश के सरोवर में वर्षा के कारण चारों ओर पंक छाया हुआ है। घास भी उग रहा है। युद्धों के कारण उस दुर्ग की शोभा और भी क्षीण हो गयी है। हे स्वामी, युद्धकाल में तो सारे नियम और विधान इसी तरह क्षीण हो जाते हैं, जैसे वर्षा की अविरल धाराओं के कारण कमल वन।)

(५३)

नाना रत्नों जटित शिखरों की बनी श्रेणियाँ हैं,
आवेगा जो अचल पथ में गंधमादन मनोज्ञ।
उत्कण्ठा से शिखर उसके भास होंगे नवीन,
"अन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः।"

(राह में चलते हुए हमें सुन्दर गन्धमादन पर्वत मिलेगा, इस पर्वत के शिखर नाना प्रकार के रत्नों से जड़े हुए हैं। हम जब उत्कण्ठापूर्वक इस पर्वत को देखेंगे, तो हमें वह ऐसा लगने लगेगा जैसे विधाता ने आज ही इसे रचा है। आपकी ही भाँति वह भी बाहर से साँवला और भीतर से परम विशुद्ध है, क्योंकि उसमें रत्नों की खदानें जो हैं।)

(५४)

फैला शैल स्फटिक-मणि की भूमि में श्वेत शृंग,
भक्ति श्रद्धा सदृश जिनका नीर है शुभ्र स्रोत।
नीली छाया प्रिय सुतनु की शोभती गंगधारा,
"स्यादस्थानोपगत-यमुना-संगमे-वाभिरम्या ।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(उसके स्फटिक मणि के शिखर चारों ओर अपने मस्तक उठाये दिखायी देंगे। उनसे बहने वाला निर्मल जल ऐसा जान पड़ेगा जैसे श्रद्धा और भक्ति का प्रवाह हो। इस गंगा की धारा में जब आपके श्याम शरीर की छाया पड़ेगी, तब ऐसा प्रतीत होगा मानों गंगा और यमुना का संगम हो गया है।)

(५५)

शोभा शाली तरणि-मणियों से जड़े उच्च शृंग,
पीले-पीले फलयुत जहाँ वृक्ष हैं पुण्य रूप।
आभा छायी मधु फलवती श्यामता जामुनों की,
"शोभां शुभ्रत्रिनयन-वृषोत्खात पंकोमपेयां।"

(सूर्यकान्त मणियों से रचित उसकी ऊँची चोटियाँ बहुत सुन्दर हैं। इन शुभ्र शिखरों पर पुण्य के समान पीले-पीले फलों से लदे हुए वृक्ष बड़े भले दिखायी देते हैं। कहीं काले-काले जामुनों की श्याम शोभा अनूठी दिखाई दे रही है। ऐसा जान पड़ता है मानों गौर शरीर वाले शंकरजी के शुभ्र बैल के सिर पर सींगों से गीली भूमि खोदने के कारण कीचड लग रही है।)

(५६)

'स्वामी आए' यह सुन कई दीन ले याचनाएँ,
आजायेंगे नमित मुख हो दुःख दारिद्रय खोने।
आशाएँ हों सफल उनकी दैन्य से मुक्त हों वे,
"आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानां।"

(जब आप नगर में प्रवेश करेंगे, तब अनेक दीन यह सुनकर कि हमारे स्वामी आ गये हैं, अपने दारिद्रय जनित कष्ट दूर करने की आशा में अनेक प्रकार की याचनाएँ लेकर आ पहुँचेंगे। मैं चाहती हूँ कि उनकी आशाएँ पूर्ण हों। सज्जनों की सम्पदा का सदुपयोग इसी में है कि उससे दीनों का दुख-दैन्य दूर हो।)

(५७)

सेनाएँ भी पदध्वनि लिए संघ आदेश बद्ध,
शलों में भी कपि सदृश जो रुद्ध होती नहीं हैं।
संग्रामों के इन अभिमुखों को दिलाना प्रबोध,
"के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारंभयत्नाः।"

(आपके स्वागतार्थ अपने दलपति के आदेशानुसार पद ध्वनि करती हुई सेनाएँ भी आयेंगी। वानर दलों की भाँति ये सैन्य दल बड़े-बड़े पर्वतों में भी रुकते नहीं हैं। इन युद्ध के प्यासे सैनिकों को हे स्वामी आप यथार्थ का बोध कराइयेगा कि जिससे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाज में सुख-शांति स्थापित हो क्योंकि आरंभ में ही निष्फल यत्न करने वालों में ऐसा कौन है जो असफल न हो।)

(५८)

विन्ध्याद्रि में परम सुखमा धाम कामारि का है,
जाना प्यारे नमन करना वंद्य पादारविन्द।
सेवा से ही दुरित कटते पुण्य की प्राप्ति होती,
"संकल्पन्ते स्थिरगण-पद-प्राप्तये श्रद्दधानाः।"

(द्वारिका पहुँचने से पहले राह में विन्ध्याचल पर्वत आयेगा। उस पर भगवान शंकर का मंदिर है। हे प्यारे। आप वहाँ जाकर उनके वन्दनीय चरणों में प्रणाम करना। भगवान की सेवा से पाप कट जाते हैं। पुण्य लाभ होता है। श्रद्धालु जनों को जिस पद की प्राप्ति होती है, वही सिद्धादिकों का स्थिर पद आपको भी प्राप्त होगा।)

(५९)

भृंगों के हैं निकर मद से गूंजते नीप फूले,
केकी नाचें मधुर स्वर से वेणु का नाद होता।
कर्णानंदी मुरज ध्वनि में शंभु के दूत गाते,
"संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः।"

(वहाँ मदमत्त भौंरों के झुण्ड कदम्ब के फूलों पर गूंज रहे हैं। मोर नाच रहे हैं। वांसों के छिद्रों में वायु भर जाने से वांसुरी की-सी ध्वनि निकल रही है। मृदंग की मधुर ध्वनि के साथ शिवजी के दूत गा रहे हैं। इस प्रकार शंकरजी के संगीत का सारा ठाठ वहाँ जमा हुआ है।)

(६०)

प्यारे आगे गमन पथ में वेणु नामा गिरीन्द्र,
श्रृंगों से जो गगन तल को छू रहा गौर वर्ण।
पाषाणों से नव जलद की श्याम शोभा बढ़ाता,
"श्यामः पादो बलि-नियमनायोद्यतस्येव विष्णोः।"

(हे प्यारे, राह चलते हुए हमें वेणु नामक पर्वत मिलेगा। उसके श्वेत श्रृंग बादलों को छू रहे हैं। वह दृश्य ऐसा दिखायी देगा, जैसे श्याम बादलरूपी वामन भगवान वेणु पर्वतरूपी राजा बलि को उसके मस्तक पर पैर रखकर पाताल में भेजने के लिए उद्यत हो रहे हैं।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६१)

आगे स्वामी गिरि शिखर के पार द्वारावती हैं,
ऊँचे-ऊँचे सितमणि सजे सौध हैं शोभनीय ।
वप्रावेष्टी कर-निकर से व्योम को दीप्ति देते,
"राशीभूतः प्रतिदिशमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ।"

(हे स्वामी, इस पर्वत शिखर के पार पहुँचने पर हमें अपनी प्यारी नगरी द्वारिका दिखायी देगी । श्वेत मणियों से सजा हुआ उसका ऊपरी भाग वहुत सुन्दर दिखायी देता है । आस पास विशाल श्वेत कोट खिचा हुआ है, जो आकाश मंडल को भी प्रकाशित कर रहा है । उसकी शोभा ऐसी जान पड़ती है मानों भगवान शंकर का अट्टहास चारों दिशाओं से एकत्र होकर वहाँ चमक रहा है ।)

(६२)

सौध शृंगों पर सघन हो छा रहे हैं पयोद,
नीले-नीले सरस अति ही पुण्डरीक प्रभा से ।
शोभा देते, हृदय हरते, रूप नाना बनाते,
"अंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ।"

(महलों के ऊँचे श्वेत शिखरों पर काले काले घने वादल छाये हुए दिखायी देंगे । वे नील कमल की शोभा के समान आकाशरूपी तालाव में छाये हुए वड़े सुहावने प्रतीत होंगे । ये वादल अनेक रूप वदलते हुए अत्यन्त मनोहर लगते हैं । वह दृश्य ऐसा प्रतीत होगा जैसे गौरवर्ण बलरामजी के कंधे पर पड़े हुए नीलाम्बर की शोभा छा रही हो ।)

(६३)

उद्यानों में पुर निकट ही यादवों के बनाए,
क्रीड़ा शैलों पर विहरना गोमती में नहाना ।
मानों व्योम क्रमण करने कूदते अश्व वृन्द,
"सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणायाग्रयायी ।"

(हे स्वामी, नगर के समीप ही उद्यानों में यादवों के द्वारा वनाये हुए क्रीड़ा पर्वत हैं । आप उन पर विहार करना । पास ही गोमती नदी बहती है, उसमें स्नान भी कीजिये । उस नदी में इन क्रीड़ा पर्वतों की शोभा ऐसी दिखायी देती है, मानों आकाश मण्डल को पार करने के लिए सूर्य के रथ के घोड़े छलांगें भर रहे हैं । आप भी उन मणितटों पर चलने के लिए सीढ़ी की जरूरत को पूर्ण कर दीजिये ।)

(६४)

संगीतज्ञा श्रवण सुखदा किन्नरी हैं मनोज्ञा,
गातीं गाथा दनुज-अरि की कीर्ति विस्तारिता-सी ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये बालाए जल तरण में अश्व संचारिका हैं,
"क्रीड़ा-लोला श्रवण-परुषैर्गजितैर्भीषियेस्ताः ।"

(वहाँ कानों को सुख देने वाली संगीत शास्त्र में कुशल किन्नरियां भी रहती हैं। ये सुन्दर कण्ठ से आपकी कथा कहकर यशोगान करती हैं। ये किन्नरियाँ तैरने में घोड़ों की समकक्ष हैं। उस समय आप भी कौतूहलपूर्वक कर्कश ध्वनि करके उनको भयभीत कर दीजिये कि वे चकित होकर आपकी ओर देखने लगेंगी।)

(६५)

फूले अर्जुन विकसित हुई केतकी गंधवाली,
जाती फूली मधुप उमंगे गूंजते मत्त होके ।
केकी नाचें हरित पट ले, प्रेम से कूजते हैं,
"नानाचेष्टैर्जलदललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रं ।"

(वहाँ अर्जुन वृक्ष फूल रहे हैं। केतकी खिल रही है। चारों ओर सुगंध महक रही है। चमेली के फूलों पर आनन्दमग्न होकर भँवरे गूँज रहे हैं। मोर हरे-हरे वस्त्र पहने नाच रहे हैं। प्रेम से कूज रहे हैं। आप भी उन पर्वतों पर अनेक प्रकार की सुन्दर क्रीड़ाएँ करते हुए स्वच्छन्द विचरण करना।)

(६६)

अर्चाएँ ले सहित हरि के हर्ष उत्फुल्ल होके,
आजावेंगे यदुवर, लिए दर्शनेच्छा दृगों में ।
बालाएँ भी नयन जल से प्रेम का अर्घ्य देंगी,
"मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दं ।"

(आपके पहुँचने का शुभ संवाद सुनकर तथा दर्शनोत्सुक होकर अनेक प्रकार के पूजोपचार सहित कृष्ण भी सब यदुवंशियों समेत आ पहुँचेंगे। बड़े-बड़े केश-कलापों को अपने सिर पर धारण करने वाली कामिनियाँ भी वहाँ आ पहुँचेंगी। वे अपने प्रेमाश्रु से युक्त मुक्ता जड़े केश कलाप से ऐसी सुशोभित होंगी जैसे बादलों के समूह एकत्र हो गये हों।)

(६७)

अभ्रस्पर्शी महल द्युति से मूर्त्त शोभाभिधान,
श्वेताभा से अनुपमित हैं, रत्नदीप प्रकाशी ।
शोभाशाली, अविकल सजे मुग्ध शृंगार जैसे,
"प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ।"

(हमारे महल इतने ऊँचे हैं कि आकाश को छूते हैं। सुन्दर इतने हैं कि मानों शोभा के मूर्त्त रूप हों। उनकी श्वेत वर्ण की आभा बेजोड़ है। जब उनमें रत्नों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के दीपक प्रकाशित होते हैं, तब उनकी निर्मल शोभा ऐसी जान पड़ती है जैसे वह मुग्ध श्रृंगार का ही रूप हो। आपकी ही तरह सुन्दर वे हमारे महल भी हैं।)

(६८)

योद्धाओं से नगर यह है विश्वव्यापी यशस्वी,
सेनाएँ हैं अमित जिसकी शौर्यशाली प्रमत्त।
नाना दैत्य प्रहरण किया, कीर्त्ति कन्या विलासी,
"प्रत्यादिष्टाभरण-रुचयश्चन्द्रहास-व्रणांकैः ।"

(हमारा नगर योद्धाओं की वीरता से सारे संसार में यश प्राप्त कर रहा है। हमारी अगणित सेनाएँ भी अत्यन्त शूर-वीर हैं। अनेकों राक्षसों का नाश करके इन सेनाओं ने कीर्तिकन्या के साथ सम्बन्ध सुदृढ़ कर लिया है। तलवार के घावों को तो वे अपनी रुचि के अलंकार समझते हैं।)

(६९)

रोगों का ही वश न जब है, द्वारका की प्रजा में,
अत्याचारी यम-सदन की दूर ही हैं कथाएँ।
पुण्यात्मा हैं पुरजन सभी मुक्त ताप-त्रयों से,
"वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति।"

(द्वारिका की प्रजा में रोगों का जब वश नहीं चलता तो मृत्यु भय की तो बात ही कहाँ रही। वहाँ के सभी पुरवासी बड़े पुण्यवान हैं। दैहिक दैविक भौतिक सभी दुःखों से सर्वथा मुक्त। सच है, धनिक पुरुषों के लिए यौवन ही यथार्थ आयुष्य है।)

(७०)

कानों में हैं सुर-सुमन के कुण्डलों की कलाएँ,
केशों में है मृग मद रची, पत्रवल्ली कपोल।
मालाएँ हैं कुटज कुसुमों की बनीं शोभनीया,
"सीमन्ते च त्वदुपगमजं, यत्र नीपं वधूनाम्।"

(हमारे नगर की स्त्रियाँ की बड़ी रसिक हैं। उनके कानों में कल्पवृक्ष के पुष्पों के कुण्डलों की शोभा है। केशों में कस्तूरी रच रखी है। गालों पर केशर के बूटे बने हैं। कुटज के फूलों की मालाएँ उनके हृदयस्थल को सुशोभित रखती हैं। उनकी माँग में कदम्ब के फूल लगे होते हैं। आपके शुभागमन का संवाद पाकर वे भी श्रृंगार करके दर्शनार्थ आवेंगी।)

(७१)

सौंदर्यों के इस नगर में भृत्य वारांगना के,
नाचेंगे वे लय-गति लिये मार्ग में स्वागतार्थ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हर्षोत्फुल्ला नगर वधुएँ ले धनाशा मिलेंगी,
"त्वद्गंभीर-ध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु ।"

(सुन्दरता की इस नगरी में आपके स्वागत के हेतु नर्तकियों के सेवक भी अनेक प्रकार के नृत्य करते हुए मार्ग में आ जायेंगे । वे ताल, लय, गति आदि को साधकर नाचेंगे। नर्तकियाँ भी द्रव्यलाभ की आशा से प्रसन्न मुख होकर आयेंगी। उनके महलों में नित्य ही नाच-रंग हुआ करता है । जिस समय मंद-मंद मृदंग बजते हैं तब तो ऐसा ज्ञात होता है मानों बादल गरज रहे हैं ।)

(७३)

आसक्ता हैं सुरत रस में अंगना कामियों के,
आबद्धा हैं, व्यथितमदना स्वेदबाधाभिभूता ।
ग्रीष्मोष्मा से अमित विकला रात्रि में चन्द्रिका से,
"व्यालुम्पन्ति स्फुट-जललवस्यंदिनश्चन्द्रकान्ताः ।"

(ये अंगनाएँ अपने प्रेमियों की क्रीड़ा के रस में लीन रहती हैं । कामासक्त होकर जब ये स्वेद बिन्दुओं से व्याकुल हो जाती हैं, और ग्रीष्म की तपन उस बेचैनी को और भी बढ़ाकर जब उन्हें अत्यन्त विकल कर देती है, तब उनके महलों में जड़ी हुई चन्द्रकान्त मणियों से चांदनी के कारण द्रवित सुधाबिन्दुओं से वे शान्ति प्राप्त करती हैं ।)

(७४)

पूर्वार्धों में निशि रमणियाँ धूप देतीं गृहों में,
दीपज्वाला उदित गृह से धूम जाता भगा है ।
उच्छ्वासों सा निकल गृहसे भीत-सा गंधवाही,
"धूमोद्गाराऽनुकृति निपुणा जर्जरा निष्पतंति ।"

(रात्रि के प्रथम प्रहर में स्त्रियाँ अपने-अपने घरों में धूप जलाती हैं। उन प्रकाशमान घरों के वातायनों से उसका सुगन्धित धुंआ डरते-डरते निकलता है, वह ऐसा दिखायी देता है जैसे किसी हृदय का उच्छ्वास हो। उस धुएँ की अनेक आकृतियाँ बनती जाती हैं और अन्त में वह वायु में विलीन हो जाता है ।)

(७५)

लज्जा शीला नवल वधुएँ कान्त हैं प्रेममत्त,
भ्रू भंगों से हृदय हरतीं अंग शोभा छिपातीं ।
ज्योत्स्ना में भी सकुच कुचके द्वन्द्व देते सुगन्ध,
"ह्रीमूढ़ानां भवति विफला प्रेरणाचूर्ण-मुष्टिः ।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(हमारे नगर की नवोढ़ाएँ बड़ी शर्मीली हैं और उनके पति प्रेम की कामना में लीन । ये वालाएँ जब लज्जा के कारण तिरछी चितवन से देखती हैं और अपने अंगों की शोभा को छिपाती हैं तब और भी अधिक सुन्दर दिखायी देती हैं। चाँदनी रात में उनकी सकुचाहट के रहते भी परिमल लगे स्तनों से सुगन्ध की महक उठती है। ये वालाएँ अपनी लज्जाशीलता के कारण सामने रखे रत्नदीपों पर कुमकुम को मुठ्ठी में लेकर फेंकती हैं, पर वे तो रत्नदीप रहे, वे भला कैसे बझते । आखिर उनका प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है ।)

(७६)

गातीं वेश्या मधुर स्वर में आपकी कीर्त्ति-गाथा,
वाद्यों से भी ध्वनि उदित हो गूंजती हैं दिशाएँ।
उत्साही वे अति बल भरे रोहिणी पुत्र आदि,
"बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति ।"

(जब नर्तकियाँ मीठे स्वरों में आपका यशोगान करती हैं, तब उनके वाद्यों की ध्वनि से दशों दिशाएँ गूंजने लगती हैं । बलराम आदि अनेक यदुवंशी भी इस प्रकार के समारोहों में सम्मिलित होने की कामना से उद्यानों में आते और आपकी यशोगाथा श्रवण करते हैं ।)

(७७)

उद्यत्कामा नव युवतियाँ सिन्धु की उर्मियों सी,
लेने आतीं शशि वदन का प्यार माधुर्य मूर्ति ।
सौध शृंगों पर शरद के यादवेन्द्र प्रभा में,
"नित्य-ज्योत्स्ना-प्रतिहत-तमोवृत्ति-रम्याः प्रदोषाः ।"

(सागर की तरंगों के समान चंचल और वासनाओं के वशीभूत हुई नवयुवतियाँ अपने पतियों के चन्द्र मुख का प्यार करने के लिए इन उद्यानों में आया करती हैं। उस समय महलों के शिखरों पर शरद ऋतु के चन्द्रमा का जो प्रकाश छिटकता है, उससे अंधकार का नाश हो जाता है। वह प्रकाश नित्य सायंकाल की वेला को बहुत ही मनोरम और सुन्दर बना देता है ।)

(७८)

हेमंतों में परिमल लगा देह में गन्ध वाला,
धारे भूषा वसन वर वे गोमती के किनारे ।
फूले कुन्द प्रसव सुखमा को लजाती सुरम्या,
"संक्रीड़न्ते मणिभिरमर-प्राथिता यत्र कन्याः ।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(हेमंत ऋतु में वहाँ की कन्याएँ अपने शरीर पर सुगंधित उबटन लगाकर तथा बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण करके गोमती के तट पर जाती हैं । उनकी सुन्दरता फूले हुए कुन्द-कुसुमों की मनोरमता को भी लज्जित कर देती हैं। देवता भी उनसे प्रेम की याचना करते हैं । वहाँ पहुँचकर ये कन्याएँ मणियों के साथ क्रीड़ा किया करती हैं ।)

(७९)

चित्ताकर्षी सुमन जिसमें हैं खिले स्वर्ण तुल्य,
गन्धस्पर्शी व्यजन जिसका है मनोमुग्धकारी ।
रोपे हैं ये त्रिदशपति ने यादवों के लिये ही,
"एक: सूते सकलमबला-मंडनं कल्पवृक्ष: ।"

(वहाँ कल्पवृक्ष के मनोहर एवं स्वर्ण सदृश पुष्प खिले रहते हैं; उन फूलों से गन्ध ग्रहण करके जब वायु बहता है तो मन को मुग्ध कर देता है । देवताओं के राजा इन्द्र ने यादवों के लिए ही इन कल्पवृक्षों को यहाँ लाकर लगाया है कि स्त्रियों को एक मात्र इन्हीं पुष्पों के द्वारा सब प्रकार की श्रृंगार सामग्री उपलब्ध हो जाय ।)

(८०)

देखो प्यारे नगर पथ में हैं जड़े चन्द्रकान्त,
रामाओं के चरण उभरे केशरालिप्त चिन्ह ।
केशों में के कुसुम कुच से रुद्ध होके गिरे हैं,
"नैशो मार्ग: सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ।"

(हे स्वामी, हमारी नगरी के मार्ग चन्द्रकान्त मणि से जड़े हुए हैं । उन पर चलने के कारण अंगनाओं के केशर चर्चित चरण चिन्ह अंकित हो जाते हैं । जब अभिसारिकाएँ रात को अपने प्रेमियों से मिलने जाती हैं, तो उनके केशों में लगे फूल खिसक कर कुचों से अटकते हुए उस राह में गिर पड़ते हैं । इन फूलों को देखकर प्रात: काल लोग समझ जाते हैं कि रात्रि में प्रेमिकाएँ इसी मार्ग से गयी हैं ।)

(८१)

श्री गौरी ने दनुज कुल के वीर बाणासुरों से,
दुःखार्त्तों को अभय करने घोर धन्वा उठाया ।
ऐश्वर्यों का मुकुट पहिना, यादवों को सजाया,
"तस्यारंभश्चतुर-वनिता-विभ्रमैरेव सिद्ध: ।"

(बाणासुर आदि राक्षसों ने जब बड़ा उपद्रव मचाया था और उनके अत्याचारों से जब सब लोग त्राहि-त्राहि करने लग गये थे, तब सब प्रजाजनों का संकट निवारण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने के लिए कृष्ण ने उन राक्षक्षों का नाश किया । सब यदुवंशियों के मस्तक पर विजय का मुकुट धारण कराकर उन्हें शोभायमान किया । द्वारिका की कुशल नायिकाओं द्वारा किये गये कटाक्षपात से ही उनके वैभव का प्रारंभ सिद्ध हुआ है ।)

(८२)

प्यारे, आगे रथयुत पुरी प्रान्त में यादवेन्द्र,
आए होंगे हरि, हृदय में आपकी ले प्रतीक्षा ।
आकांक्षा से नव तरु सजे, तोरणों में अशोक,
"हस्तप्राप्यस्तवक-नमितो बालमन्दार-वृक्षः ।"

(हे प्रिय, नगर में प्रवेश करते समय आपको यादवेन्द्र श्रीकृष्ण मिलेंगे । वे आगे आकर पूर्व से ही आपकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे । अशोक के नवीन वृक्ष सज-धजकर आपके शुभागमन की उत्सुकता में तोरण बने खिल रहे होंगे । बाल मन्दार के वृक्ष भी फूलों के गुच्छों से लदकर इतने झुक गये होंगे कि सहज ही उन तक हाथ पहुँच जाय मानों वे भी नम्र होकर आपके स्वागत में उद्यत होंगे ।)

(८३)

फूले काँस प्रमुद खिलते चामरों से विकासीं,
फूले होंगे कुमुद सर में छत्र सी कांति धारे ।
शोभा सारी शरद ऋतु की कीर्त्ति गाथा बनेगी,
"नाध्यास्यन्ति व्यपगत-शुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः ।"

(हे स्वामी, आप जब वहाँ पहुँचेंगे तब तक शरद ऋतु आ जावेगी । तब प्रकृति भी राज चिन्हों के द्वारा आपका स्वागत करेगी । कांस के फूल मस्ती में हिल-हिलकर आप पर चंवर झलेंगे । तालाबों में कुमुद खिलकर आपके लिए छत्र रूप होंगे । शरद ऋतु की समस्त शोभा आपकी कीर्ति की कथा बनकर प्रत्यक्ष हो जायगी । वहाँ के हंस भी आपको देखकर मानसरोवर की चिन्ता छोड़ देंगे । वे भी आपका स्वागत करेंगे ।)

(८४)

राजाओं के रथध्वज उड़ें लिप्त हो चन्दनों से,
शौरी पीताम्बर धर तुम्हें ले चलेंगे पुरी में ।
शैल प्रान्तों निकट चलते श्याम अम्भोद के-से,
"प्रेक्ष्योपान्त-स्फुरित-तड़ितं त्वां तमेव स्मरामि ।"

(श्रीकृष्ण बलराम आपको आगे आकर राजचिन्हांकित रथ में बैठावेंगे । जब आपका रथ चलने लगेगा तो चन्दन चर्चित पताकाएँ फहराने लगेंगी । उस समय हम दोनों पर्वत की अधित्यका में चलते हुए श्याममेघ और उसके प्रान्त भाग में चमकने वाली बिजली की प्रभा के समान दीप्तिमान होंगे ।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८५)

संध्या में है मधु सुरभि से मत्त हो यादवों की,
क्रीड़ासक्ता अलस-मदना अंगनाएँ रसज्ञा।
देती हैं वे अधर-मधु के साथ उन्मुक्त प्याले,
"कांक्षन्त्यन्यो वदन-मदिरां दोहृदच्छद्मनास्याः।"

(संध्या के समय यादवों की रसवती नायिकाएँ काम क्रीड़ा के हेतु उत्सुक होकर मदिरा पान करती हैं। उनके प्रेमी को भी मदिरा की सुगन्ध भरे अपने अधर और मधु दोनों का ही स्वच्छन्द पान कराती हैं। वे प्रेमी भी दोहद के बहाने अपनी प्रियाओं के मुख-मदिरा का इस प्राप्त करने की आकांक्षा किया करते हैं।)

(८६)

सौध श्रेणी सुरत प्रद में कीजिए आप वास,
रत्नाभा से रचित वसुधा द्वार है तोरणों का।
प्यारे होगा अति सुख तुम्हें देख आवास शोभा,
यामध्यास्ते दिवस-विगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः।

(हे स्वामी, आपको भी अपने महलों में चलने पर सब प्रकार के विषय भोगों का सुख प्राप्त होगा। हमारे महल कितने सुन्दर हैं रत्नों द्वारा जटिल फर्श है, द्वार पर रत्नों के तोरण लगे हैं। सायंकाल के समय आपका मित्र मोर वहाँ आकर आवास ग्रहण करता है। हे प्यारे, बादल और बिजली के मिलन की भाँति हमारे मिलने से आपको भी अति सुख प्राप्त होगा।)

(८७)

उत्कण्ठा में जनक जननी बंधु मित्रादिकों के,
शोभा शाली सदन अति ही प्रेम से दीप्त होंगे।
त्यागी जैसे भवन अपने आज हैं शून्य मौन,
"सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम्।"

(हे प्रिय, आपके पिता-माता, भाई, बन्धु, इष्ट मित्र सभी आपके शुभागमन की उत्कण्ठा लिये हैं। आपके पधारने पर सब के हृदय में हर्ष छा जायगा। सब के सुन्दर भवन प्रेम की प्रभा में प्रकाशित हो उठेंगे। हमारे भवन तो आज त्यागी व्यक्ति की तरह मलिन, शून्य और मौन हो रहे हैं। आपके वियोग, में सभी उदास हैं। जिस तरह सूर्य के अभाव में कमलवन मुरझाया रहता है, ठीक वही दशा इस समय हमारे भवनों की हो रही है।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८८)

रानी के यों वचन सुनके मेघ हो भूधरस्थ,
मायाव्यापी विचलित हुआ राजयोगी समेत।
तारुण्य श्री निरख इसको अश्रु मुक्ता बहाता,
"खद्योताली-विलसित-निभाम् विद्युदुन्मेष-दृष्टिम् ।"

(रानी के ये वचन सुनकर पर्वत पर छाये हुए बादल करुणार्द्र हो गये। वे माया से व्याप्त होकर पर्वत पर उतर आये। राजयोगी भगवान नेमिनाथ भी रानी को मोहान्धकार में लीन देखकर विचलित हो गये। बादलों ने देखा कि रानी कितनी सौन्दर्य लक्ष्मी है और वह किस प्रकार करुणालाप कर रही है, वे भी मोती की तरह आंसू बहाने लगे और अपनी बिजलीरूपिणी दृष्टि को जुगनू की पाँति के सदृश थोड़ा-थोड़ा चमका कर उसकी करुण दशा देखने लगे।)

(८९)

बोली आली तब शिर झुका देव, हे दीनबन्धो,
मेरी रानी दुखित अति है नाथ, किंचिद्दया हो।
आशा बांधे विनय करती, अद्रिकावास छोड़ें,
"या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः।"

(जब रानी इसके आगे कुछ न बोल सकी तब उसकी सखी मस्तक झुकाकर कहने लगी। वह बोली--हे देव, हे दीनबन्धु, देखिये, मेरी स्वामिनी, आपके वियोग में अत्यन्त विकल है। आप इस पर कुछ तो दया कीजिये। यह हृदय की समस्त आशा को एकत्र कर आप से विनती करने आयी है। आप अब अपना यह वनवास त्यागकर घर लौटिये। मेरी स्वामिनी विधाता की रचना में सर्वोत्कृष्ट है। सौंदर्य की इस अधिष्ठात्री को निराश न कीजिये।)

(९०)

कष्टों से है कृशतन हुई, कोमला, कामदग्धा,
आघातों में धृति धर बिताती रही भोग्य काल।
खिन्ना दीना कमल बदना म्लान छिन्ना लतासी,
"जातां मन्ये तुहित-मथितां पद्मिनी वान्यरूपाम्।"

(हे प्रभु, यह कष्टों से दुर्बल हो गयी है। इस कोमल हृदया को कामदेव ने बुरी तरह जला रखा है। आपके वियोग के असह्य आघात को इसने बड़े धैर्य के साथ अब तक सहा है। सुख-भोग के दिन शोक में कटे हैं। यह खिन्न हो रही है। इसका कमल जैसा मुख मलिन हो गया है। जैसे कोई लता उखड़ जाने पर मुरझा जाती है। अथवा जिस तरह कमलिनी पर पाला पड़ने से वह म्लान हो जाती है, ठीक इसी प्रकार इसकी भी सूरत ही बदल गयी है।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(९१)

इच्छा है ये मृदुकर लिये आपका शान्ति पाये,
तृष्णार्ता है, विरह विधुरा कान्तिहीना विषण्णा।
तप्ता, क्षीणा, कुमुदिनि यथा वारिहीना मलीना,
"इन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरण-क्लिष्ट-कान्तेर्बिभर्ति।"

(इसकी कामना है कि, आपका कोमल हाथ अपने हाथों में ले कि इसे शान्ति प्राप्त हो सके। आपके दर्शनों की तृष्णा से यह विकल है, वियोग के कारण इसकी शोभा क्षीण हो गयी है। यह अत्यन्त दुखित होकर जल रही है, जिस तरह पानी के बिना कुमुदिनी मुरझा जाती है, उसी तरह यह भी मलिन हो रही है। इसके मुख की ओर तो देखिये। बादलों की ओट में आ जाने से चन्द्रमा की शोभा जैसे फीकी हो जाती है, वही हाल इसके मुखचन्द्र का भी हो रहा है।)

(९२)

निद्रा में भी पितु गृह बसी भ्रान्त हो चौंकती है,
स्वामी जाते तजकर कहाँ, बोल आंसू बहाती।
नेत्रों द्वारा प्रकट इसकी हो रही हृत्कथा है,
"कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्यप्रियेति।"

(कई बार यह पिता के घर में जब निद्रावश होती है तो बारबार भ्रमित-सी होकर चौंकती है। स्वप्न में भी मानों इसे चैन नहीं है। यह अर्ध निद्रितावस्था में बोलने लगती है कि हे स्वामी, आप मुझे छोड़कर कहाँ जा रहे हैं, और सावधान होने पर जब इसे अपनी वियोग-व्यथा का बोध होता है, तो रोना शुरू कर देती है। इसकी आँखों की ओर देखिये न, कैसी सूज रही हैं। आँखें खुद-ब-खुद इसके हृदय की बेचैनी को प्रकट कर रही है। मुझ से भी कई दफा पूछा करती है कि क्यों सखी, तुझे भी कभी मेरे भर्त्ता याद आते हैं? तुझे भी तो वे बहुत मानते थे?)

(९३)

उद्वेगों को हरण करने वेणु वीणा उठाती,
रो लेती उच्छ्वसित गति में अश्रु के गीत गाती।
चित्रस्था-सी निमिषरहिता निश्चला मूर्च्छिता-सी
"भूयो भूयः स्वयमपिकृतां मूर्च्छनां विस्मरंती।"

(यह अपने शोक के आवेगों को भूलने और मन बहलाने के लिए बांसुरी या वीणा हाथ में लेती है, पर आँखों से आँसू के तार टूटने ही नहीं पाते। रोने और उसाँसे भरने लगती है। वही इसका गायन बन गया है। कई बार चित्र लिखित की तरह अपलक बैठी रहती है बेहोश की तरह निश्चल हो जाती है। अपनी सुध-बुध खो देती है और अपनी पूर्वाभ्यस्त मूर्च्छनाओं को भी बार बार भूलती रहती है।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(९४)

माता पूजी, व्रत विधि किए आपकी प्राप्ति हेतु,
श्रद्धाओं के सुमन चुनके हार नाना पिरोये।
दैवज्ञों को जब तब बुला पूछती शांति पाती,
"प्रायेणैते रमण-विरहेष्वंगनानां विनोदाः ।"

(आपकी प्राप्ति के लिये इसने कई देवी-देवता पूजे हैं। अनेक विधि के व्रत रखे हैं। दिन-रात अपनी श्रद्धाओं के फूल चुनकर हार पिरोती रही है। कई बार ज्योतिषी को बुलाकर उससे आपके मिलने के प्रश्न पूछ-पूछ कर शान्ति पाने का यत्न करती रही है। पति के वियोग में स्त्रियाँ प्रायः ये ही बातें करके अपना मन समझाया करती हैं।)

(९५)

हा, हा, पाणिग्रहण दिन से आपने योग लेके,
त्यागा है क्यों अकरुण ! इसे शून्य में यों अकेली।
छोड़े पुष्पाभरण इसने बाँधती मात्र जूड़ा,
"गण्डाभोगात्कठिन-विषमामेक वेणीं बिभर्ति ।"

(हे देव, बड़े दुःख का विषय है कि आपने विवाह के दिन से ही वैराग्य धारण किया, इस सखी के लिए कुछ भी नहीं सोचा। निर्मोही होकर आपने इसे इस तरह शून्य में अकेली क्यों त्याग दिया। देखिये तो, इसकी अब क्या दशा हो गयी है। इसने फूलों के सब श्रृंगार तज दिये हैं। बिना तेल लगाये सूखा-सूखा जूड़ा बांध भर लेती है। इस कारण इसकी वेणी अत्यन्त कठिन हो गयी है। उसे भी यह किसी तरह धारण किये रहती है।)

(९६)

गीतों द्वारा मधुरस कथा उत्सवों से निशा में,
नाना वाक्यों नव अभिनयों से रिझातीं इसे हैं।
आली के ये असफल रहे प्रार्थना-यत्न सारे,
"तामुन्निद्रामवनि-शयनां सौध-वातायनस्थः ।"

(सखियों की ओर से इसका मन बहलाने के लिए जितने यत्न किये जाते हैं, वे सब व्यर्थ होते हैं। रात्रि के समय इसे कभी गीतों के द्वारा, कभी कथाएँ कहकर, कभी उत्सव करके या नाना प्रकार के बाजे बजाकर अथवा कभी नाटक-प्रहसन आदि द्वारा इसे वे रिझाती हैं, प्रार्थना करती हैं, पर यह महल के झरोखे के पास पृथ्वी पर लेटी रहती और रोया करती है। इसे समझाने में सब असफल ही होती हैं।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(९७)

आख्यानों में विविध लय के गीत वाद्यादिकों ने,
आंसू होके इस हतविभा को किया सिक्त ही है।
सौ-सौ वर्षों सम क्षण हुए रात्रि की शून्यता में,
"तामेवोष्णै-विरहि-जनितै रश्रुभिर्यापयन्ती ।"

(अनेक कथाएँ और आख्यान इसे सुनाये जाते हैं। नाना प्रकार के गीत गाये और बाजे बजाये जाते हैं पर इन उपचारों का परिणाम विपरीत ही हुआ है। इन प्रयत्नों ने इस दुखिया को और भी अधिक रुलाया है। दिन तो खैर, किसी तरह कामकाज में कट भी जाता है पर रात्रि के सुनसान क्षण तो इसके लिए सौ-सौ वर्षों के समान भारी हो गये हैं। सच मानिए, इसकी रातें तो विरहजनित उष्ण आँसू बहाने में ही समाप्त होती हैं।)

(९८)

देखो सारा जगत इसका आप ही हैं यथार्थ,
पूजा, अर्चा, जप, तप, किया आपका एक मात्र।
चित्रों में है रचकर तुम्हें देखने भी न पाती,
"आकांक्षंती नयन-सलिलोत्पीड़रुद्धावकाशी ।"

(हे प्रभु ! देखिये, एक मात्र आप ही इसके आधार हैं। इसका संसार, इसका परिवार, इसके नाते-रिश्ते सब केवल आप तक ही सीमित हैं। आज तक इसने केवल आपका ही पूजन-अर्चन, जप-तप, सब कुछ किया है। कई बार इसने आपका चित्र बनाया पर चित्र के पूर्ण होते ही इसे अपनी वियोगावस्था का बोध हो जाता है और यह रोने लगती है। आँसुओं के कारण चित्र में भी आपको यह देख नहीं पाती। चाहती है कि थोड़े समय के लिए आँसू रुक जाएँ, पर इतना अवकाश ही नहीं रहता। आंसू की धाराएँ अविरल बहा करती हैं।)

(९९)

संविद्धा-सी मदनशर से नेत्र उन्मीलिता हो,
संज्ञा पाती क्षण भर कभी देखती दीन होके।
शैया भी है नव कुसुम सी दे न पाती प्रशान्ति,
"साभ्रेन्हीव स्थलकमलिनी न प्रबुद्धा, न सुप्ता ।"

(यह कामदेव के तीक्ष्ण बाणों से विधकर इतनी विकल हो जाती है कि इसके पलक अध खुले रह जाते हैं। यह चेतनाशून्य हो जाती है। क्षण भर के लिए जब इसे सुधि आती है, तो दीन होकर इधर उधर देखने लगती है कि, कदाचित् आपके दर्शन हो जायें। नूतन पुष्पों की शैया भी इसे जला ती है। इसकी दशा का अनुमान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करना बड़ा कठिन है। दिन के समय जब सूर्य देवता बादलों की ओट में छिपे होते हैं, उस समय स्थल कमलिनी न तो विकसित रहती है न सुप्त। न जीवित न मृत। इसी तरह इसकी भी अर्ध मृत अवस्था हो रही है।)

(१००)

ये वार्त्ताएँ सुन जननि ने खिन्न चिन्तातुरा हो,
भेजा मेरे सह चर निशा में दशा देखने को।
दुःखार्त्ता की सकरुण दशा देखके दूत रोया,
"प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद् भ्रातरुक्तं मया यत्।"

(जब मेरी सखी की यह करुण दशा इनकी माताजी ने सुनी तो वे बड़ी चिन्तित हुई। उन्होंने मेरे साथ एक दूत भेजा कि वह चलकर इसकी स्थिति को देख ले और माताजी को सूचित करे। इस दुःखिनी की दयाजनक दशा देखकर दूत से न रहा गया। वह रो पड़ा। मैं यह बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कह रही हूँ। जो कुछ मैंने निवेदन किया है, वह सब आपके सामने ही है। आप भी अपनी आँखों से देख रहे हैं कि इसकी क्या दशा है।)

(१०१)

माता आई सुन यह दशा, भोर ही दुःखिता की,
देखा पुत्री सजल नयना शोकमग्ना पड़ी थी।
वार्ता भूली जननि दृग से अश्रुधारा बहाती,
"प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा।"

(माता ने प्रातःकाल जब दूत के द्वारा इस दुःखिनी की चिन्ताजनक दशा को सुना तो वह तुरंत समीप आ गई। उन्होंने देखा कि यह शोकमग्न होकर आँसू बहाती हुई पृथ्वी पर पड़ी हुई थी। माता इससे वातचीत करना ही भूल गई और स्वयं ही रोने लगी। यह स्वाभाविक होता है कि सरस हृदय वाले व्यक्तियों का अन्तःकरण दयार्द्र होने के कारण उनकी वृत्तियाँ करुणाजनक स्थिति को देखते ही सजल हो जाती हैं।)

(१०२)

ले अंकों में कथन करने यों लगीं निर्दयी हैं,
स्वामी तेरा, कुलिश उर हो, छोड़ता अन्यथा क्यों?
क्यों रोती तू सजल नयना शोक उच्छ्वासिता हो,
"मीन-क्षोभाच्चल-कुवलय-श्री-तुला-मेष्यतीति ।"

(माता इसे गोद में लेकर समझाने लगी। कहा, कि तू क्यों रोती है। तेरा पति निर्दयी हो गया है। उसका हृदय वज्र का बना है, अन्यथा वह तुझे त्यागकर क्यों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाता। वारंवार शोक की उच्छ्वासें भरकर तू आँसू क्यों बहा रही है। जिस तरह किसी मछली का आघात पाकर कमलिनी कम्पित होती है, तेरी आंखें उसी स्थिति में हो रही हैं।)

(१०३)

अन्तर्ज्वाला ज्वलित उर से सूर्य क्या तप्त होता,
पद्मश्रेणी हतप्रभ हुई पंक के क्रोड़ में क्या ?
निश्वासों से विरह जलता वन्हि ज्यों वायु से है,
"यास्यत्यूरुः सरस-कदली-स्तंभ-गौरश्चलत्वं ।"

(पुत्री, जरा सोच, क्या इस रोने से तेरे पति का हृदय द्रवित हो सकेगा। क्या कभी यह संभव है कि अन्तर्ज्वाला से जलता हुआ हृदय सूर्य को जला दे या कीच में जन्म लेने वाला कमल कभी मलिन हो जाय। वह तो नित्य निर्लिप्त ही रहता है। यही स्थिति तेरे पति की भी है। तेरे करुणालाप से उसका हृदय परिवर्तन होने वाला नहीं है। निश्वासों की हवा से विरह की आग अधिक उद्दीप्त होती है जैसे वायु के वेग से आग। तेरी जंघाएँ भी सरस कदली के स्तंभ के समान थर थर काँपती हैं। अतएव......)

(१०४)

पुत्री छोड़ो यह विकलता शान्त हो मिष्ट बोलो,
निर्मोही हो, मुझ पर दयायुक्त हो धैर्य धारो।
मोक्षार्थी हो, विषय तज दो, लो अनासक्त वृत्ति,
"सद्यःकण्ठच्युत-भुजलतां ग्रन्थिगाढ़ोपगूढ़म् ।"

(हे बेटी, यह व्याकुलता छोड़ो, स्थिरता ग्रहण करो। मीठे वचनों द्वारा मेरा समाधान करो। तुम भी निर्मोही बन जाओ। मेरे वृद्धापकाल पर दया करो। धैर्यशील बनो। मोक्षमार्ग का अनुसरण करो। भोगों की लालसा छोड़ दो। अनासक्त बनो। पति से मिलने की अभिलाषा, उसके आलिंगन के लिए भुजाएँ फैलाना यह सब स्वप्न के समान असत्य बातें हैं। इनके मोहबन्ध से मुक्त हो।)

(१०५)

गोदी में ले मधुर वचनों से दुलारा सुता को,
जाने पाई न इस विवशा की व्यथाएँ तथापि।
चिन्ता है ये तनु न तज दे कोमला है कृशांगी,
"वक्तुं धीरस्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः ।"

(इस प्रकार माता ने गोद में बैठाकर मीठे वचनों से इसे शान्त करने का प्रयत्न किया परन्तु इसकी स्थिति परवश जैसी ही रही। इसकी व्यथा न्यून न हो सकी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब सब को यह चिन्ता हो रही है कि यह कृशतनु और कोमल तो है ही। इस व्यथा में कहीं प्राण न त्याग दे।)

(१०६)

माता का भी सफल न हुआ ज्ञानपूर्ण प्रबोध,
पीड़ाओं को निरख इसकी आलियां चिन्तिता हैं।
रोते रोते कर युगल से दासियों को हटाती,
"मन्दस्निग्धैर्ध्वनिभिरबला-वेणि-मोक्षोत्सुकानि ।"

(माता का ज्ञान भरा उपदेश मेरी सखी को सान्त्वना न दे सका। अब इसकी व्यथा देखकर सब सखियाँ चिन्तित हैं। दासियाँ जब इसे सान्त्वना देने को होती हैं तो यह रो-रोकर उनको निवारण कर देती है। अब वर्षा ऋतु छा रही है। बादल गरज रहे हैं। इस गर्जना को सुनकर विदेशियों के हृदय में अपनी पत्नी की वेणी खोलने की उत्कण्ठा तीव्र हो जाती है और यह सखी स्वयम् यहाँ उपस्थित होकर अनुरोध कर रही है कि आप घर लौट चलें। उस दशा में आपको इसकी उपेक्षा कदापि नहीं करनी चाहिये।)

(१०७)

साध्वी द्वारा सुभग तुमको देखने दूत भेजा,
जिज्ञासा से सुन तव कथा हो गई शोकमग्ना।
उच्छ्वासों से भर गया चित्र-सी हो गई थी,
"कान्तोदन्तः सुहृदुपगतः संगमात्किंचिदूनः ।"

(माताजी ने दूत भेजकर आपकी खोज कराई। पर जब वह दूत लौटा तो इसे बड़ी आशा हुई कि मुझे अपने प्राणप्रिय के समाचार सुनने को मिलेंगे, क्योंकि पति के मिलन से जो आनन्द पत्नी को होता है, उससे कुछ ही कम आनन्द मित्र द्वारा उसका संदेश पाने से होता है, पर दूत ने जब आपकी योग स्थिति का वर्णन किया तो यह शोक सागर में डूब गयी। रोते-रोते चित्रस्थ-सी हो गयी।)

(१०८)

ये पीड़ाएँ सहकर सखी भाग्य को रो रही है,
नाता जोड़े विरह दुख के वर्ष से वासरों से।
अन्तर्वासी जब तुम हुए सौख्य होगा कहाँ से,
"संकल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः ।"

(मेरी सखी तभी से इन सब कष्टों को सहती जा रही है और वियोग के एक-एक दिन को एक-एक वर्ष के समान बिताकर दुर्भाग्य को रो रही है। सच भी है कि जब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आप अन्तर्ध्यान हो जाते हैं, तो सुख भी कहाँ से रहेंगे ? नारी का सुख तो पति तक ही है। हाय, बैरी विधाता ने अपने पूर्व संकल्पों के कारण आपसे मिलने का मार्ग ही रोक दिया है।)

(१०९)

पाई आज्ञा तब जनक की ले मुझे संग आली,
आई है ये विनय करने आप से लौटने की।
कष्टों में भी विषमशर के क्या न रक्षा करेंगे,
"पूर्वाभाष्यं सुलभ-विपदां प्राणिनामेतदेव ।"

(आखिर पिता की आज्ञा प्राप्त करके यह सखी मेरे साथ यहाँ आ गयी है। इसकी प्रार्थना है कि आप घर वापस लौट चलें। हे देव ! क्या कामदेव के शरों से आप इसकी रक्षा नहीं करेंगे ? जितने शरीरधारी हैं, काल सब के सिर पर नित्य नाचता रहता है। पल भर भी किसी की खैर नहीं। कौन जाने कब वह किसे घर दबोचे। अतएव इसकी प्राण रक्षा के कार्य में आप विलम्ब न करें।)

(११०)

हे धर्मज्ञ, विरह ग्रसिता व्याधि से दग्ध प्राणा,
आ सकता है पद कमल में एकचित्ता सखी ये।
याञ्चा मेरी यदुकुलपते अन्यथा हो न जाये,
"त्वामुत्कण्ठा-विरचितपदं मन्मुखेनेदमाह ।"

(हे धर्मवान, मेरी सखी विरह व्यथा से विकल और आपके गृह त्याग की वेदना से जल रही है। दिन-रात आपके ही चरण कमलों का ध्यान करती रहती है। इसलिये मैं प्रार्थना करती हूँ। कहीं मेरी याचना व्यर्थ न हो जाय। मेरी सखी अपने द्वारा रचित पद्यों को मेरे मुख से कहला रही है। मैं जो कह रही हूँ यह मेरी सखी के हृदय की व्यथा है।)

(१११)

ऊंचाई है गिरि-शिखर में अब्धि गंभीरता में,
पृथ्वी में है सहज स्थिरता, अग्नि में व्याप्त तेज,
सौन्दर्यों में कुसुमशर है, किन्तु ये सर्व भाव,
"हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ।"

(पर्वत के शिखर अपनी उच्चता में प्रसिद्ध हैं। सागर गंभीरता में प्रख्यात है। पृथ्वी में स्थिरता का गुण है, अग्नि अपनी तेजस्विता के कारण मान्य है, कामदेव सुन्दरता में अद्वितीय है, किन्तु हे प्रभु इन सब गुणों का समन्वय एक मात्र मेरी सखी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में ही है। इसके सर्वाङ्ग की समता किसी एक वस्तु में कहीं भी एकत्र देखने को नहीं मिलती।)

(११२)

काया को क्यों गलित करके आप हैं कष्ट पाते,
मेरी प्यारी इस भगिनि को भी व्यथा में जलाते।
ज्वालाओं में कब तक जले, देह का भार ढोये,
"दिक्संसक्तप्रविरलघनव्यस्तसूर्यातपानि ।"

(हे देव, आप अपनी देह को गलाकर व्यर्थ कष्ट क्यों उठा रहे हैं और साथ ही मेरी इस सखी को भी दुःखों की आग में क्यों जला रहे हैं। सोचिये तो, यह बेचारी वियोग की ज्वालाओं में कब तक इसी प्रकार जलती रहे। और कब तक इस शरीर का भार ढोती रहे। उस पर भी अब तक के दिन तो किसी तरह कट भी गये पर अब तो वर्षा ऋतु आयी है, सूर्य का ताप कम हो गया है। आकाश में बादल उमड़ रहे हैं। अब तक जैसी बीती, बीत गई, पर वर्षाकाल का कटना कठिन है।)

(११३)

उन्निद्रा हो, व्यथित-हृदया देखती है निशा में,
स्वप्नों में ये निरख प्रभु को बोलना चाहती है।
प्राक्जन्मों का दुरित पर है दीन को जो जगाता,
"क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ।"

(यह रात भर जागती रहती है। दुखी होकर इधर-उधर देखा करती है। जब कभी कुछ नींद लगती भी है, तो स्वप्नों में आपको सामने देखकर कुछ बोलना चाहती है, किन्तु इसी बीच इस गरीबिन के पिछले पाप जैसे इसे जगा देते हैं और स्वप्न में भी यह आपके साथ वार्तालाप करने से वंचित रह जाती है। क्रूर काल इसका वह स्वप्न संयोग भी सहन नहीं कर सकता।)

(११४)

हे निर्मोही कुसुमशर को जीतते आप नित्य,
क्रोधी होके इस निबल से बैर यों ले रहा है।
शैय्या क्या है दृग विरचिता वेदना का प्रमाण,
"मुक्तास्थूलास्तरु-किसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ।"

(हे अकरुण ! आप योग द्वारा नित्य कामदेव को पराजित किया करते हैं, इस कारण वह क्रुद्ध होकर, आप पर वश न चलने के कारण, उस पराजय का बदला इस गरीबिन से लिया करता है। यह सतत रोती रहती है। इसका बिछौना इसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आंसुओं से गीला होकर इसकी व्यथा को प्रकट किया करता है । वे इसके आंसू ही हैं जो प्रातःकाल तरु पल्लवों पर जल कण होकर मोती के दानों के समान दिखायी देते हैं ।)

(११५)

रानी बोली, प्रभु यदि हुए शान्ति के प्रेम पात्र,
मैं भी आई कर ग्रहण की लक्ष्य भूता यहाँ हूँ ।
वर्षा छाई मधु पवन से छा गए नीववृन्द,
"पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदंगमेभिस्तवेति ।"

(इसके उपरान्त रानी पुनः कहने लगी कि हे स्वामी, आपने यहाँ आकर शान्ति के साथ अपना संबंध जोड़ लिया है तो मैं भी आपकी परिणीता पत्नी हूँ । और आपके करग्रहण की अभिलाषा लेकर आयी हूँ । शान्ति का ग्रहण और मेरा त्याग यह भेद-भाव क्यों ? देखिये वर्षा छाई हुई है । रसीली वायु बह रही है । कदम्ब खिल रहे हैं । मैं इस वायु को भी बड़े प्रेम से अंक लगाती हूँ कि कदाचित् यह आपके अंग का स्पर्श करके आयी होगी । मेरी उत्कण्ठा का यह हाल है कि आपकी स्पर्श की हुई वस्तुओं के समागम को भी मैं बहुत कुछ मानती हूँ ।)

(११६)

कारुण्याब्धे कर कुछ कृपा कीजिए पूर्ण काम,
देखो मेरा वपु शिथिल है मृत्यु मार्गानुसारी,
संतापों से अति तपित है प्राण लावण्य शेष,
"गाढ़ोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोग-व्यथाभिः ।"

(हे करुणासागर, अब तो अपनी कृपा की कोर से मेरा मनोरथ पूर्ण कर दीजिये । देखिये, मेरा शरीर शिथिल हुआ जा रहा है, वह मृत्यु-पथ का पथिक हो रहा है । दुःखों से इतना जर्जर हो चुका है कि अब प्राण मात्र शेष हैं । आपके वियोग की व्यथा इतनी सन्तापकारिणी है कि, उसके कारण शरीर दहकता रहता है । हाय, मैं रक्षा के हेतु किसकी शरण में जाऊँ ?)

(११७)

अंगारों में निरवधि जला अंग है दग्ध सारा,
दुःखी हूँ मैं चिर अवधि से सौख्य की कामना में ।
जन्मान्तों के कृतफल यथा भोगती हूँ सशोक,
"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमि-क्रमेण ।"

(हे स्वामी, मेरा शरीर शोकाग्नि में अनंतकाल से जलकर सर्वथा दग्ध हो चुका है । सुख की लालसा में चिरकाल से मैं दुःख ही दुःख उठाती आ रही हूँ । जैसे शोकाकुल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होकर प्राक्कर्मों का फल भोग रही हूँ, किन्तु जिसे दुख मिलता है, उसे सुख भी तो मिलना चाहिये क्योंकि सुख और दुख दोनों रथ के पहिए की तरह क्रम क्रम से ऊपर-नीचे हुआ करते हैं।)

(११८)

वर्षा बीती तम गत हुआ दुर्दशा-सी निशा का,
छाई आशा शरद सुख की प्रेम प्यासे जनों में।
भोगों का है अवसर यही मन्दिरों में स्वकीय,
"निर्वेक्ष्याव: परिणत-शरच्चन्द्रिकासु क्षपासु।"

(हे स्वामी ! वर्षा व्यतीत हो गयी, साथ ही दुर्दशारूपी रात्रि का अंधकार भी मिट गया है। प्रेम के प्यासे व्यक्तियों में शरद का सुख प्राप्त करने की आशा छा गयी है। हमारे मंदिरों में भी सुख पाने का यही अवसर है। शरद चन्द्र की चन्द्रिका छिटकी हुई रात्रियों में हम फिर मिलेंगे। हमारी अभिलाषा पूर्ण होगी।)

(११९)

मानों स्वामी विनय इतनी शैल का मोह त्यागो,
आओ संग, स्वभवन चलो चित्त में मोद पाओ।
आली बोली निशि नित इसे आपकी भ्रान्ति होती,
"दृष्ट: स्वप्ने कितव रमयन्कामपि त्वं मयेति।"

(हे स्वामी, मेरी इतनी विनय स्वीकार कीजिये। इस पर्वत की ममता त्याग कर मेरे साथ घर चलिये और सुख प्राप्त कीजिवे। उसी समय रानी की सखी ने कहा कि हे प्रभु ! इसे नित्य रात्रि के समय स्वप्न में आपकी ही भ्रांति होती है और उसमें यह कहने लगती है, कि "हे छली, मैंने तुम्हें किसी स्त्री का हाथ पकड़ते हुए देखा था।")

(१२०)

उत्कण्ठा ले उर-सदन में, संग ले सेविका को,
आर्त्ताओं-सी विकल मति हो आ गई ले सुखाशा।
आशार्थी की जब तक न हो पूर्ण सत्कामनाएँ,
"इष्टे वस्तुन्यपचित-रसा: प्रेमराशी भवंति।"

(इसलिए अपने हृदय में अनेक आकांक्षाएँ भरकर दु:खिता बनी हुई व्याकुल हृदया सुख की आशाएँ लिये इस सखी को साथ लेकर मैं आ गयी हूँ। इस आशावान की कामना पूर्ण हुए विना इसे चैन कहाँ। वियोग के कारण मिलाप की उत्कण्ठा अधिक हो जाती है और प्रेम पात्र के दर्शनों से वह पहले से भी अधिक बढ़ जाती है।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१२१)

आली मेरी दुसहशर से कामविद्धा कृशाङ्गी,
लेने आई विमुख न करो, सूज्ञ हे यादवेन्द्र ।
विश्वासों के मृदु वचन की पात्र है आपकी ये,
"प्रातः कुन्द-प्रसव-शिथिलं जीवितं धारयेथाः ।"

(फिर सखी ने कहा कि हे स्वामी, यह मेरी सखी कामदेव के असह्य आघातों से क्षीण होकर कृशाङ्गी हो गयी है । अपने शोक निवारणार्थ आपको लेने आयी है। आप सूज्ञ हैं और यह आपके आश्वासन तथा मृदु वचनों की पात्र है। कुन्द के कुम्हलाये प्रातःकालीन कुसुम के सदृश इसके जीवन की रक्षा आपके ही हाथ है।)

(१२२)

अन्तर्यामी तुम हृदय की क्या नहीं जानते हो,
श्रेष्ठों को तो इस जगत में चिन्ह पर्याप्त होते ।
वाचा द्वारा मुखर बनना युक्त होगा न इष्ट ।
"प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थ-क्रियैव ।"

(आप तो प्रभु अन्तर्यामी हैं। आप इसके हृदय की दशा को भलीभाँति समझते हैं। श्रेष्ठ पुरुष तो संसार में संकेत मात्र में सब समझ लेते हैं। अधिक क्या कहा जाय। मुझे वाचाल बनना न उचित प्रतीत होता है न पसन्द ही है। और सज्जनों की रीति है कि वे भी उत्तर दिये विना ही अपने प्रेमी की प्रार्थना सफल कर देते हैं। अभीष्ट की पूर्ति को ही वे उत्तर समझते हैं।)

(१२३)

आओ शीघ्र स्वपुर अपनी राज सत्ता सम्हालो,
उल्लासों से भुवन भर दो तात भी हों अशोक ।
विद्युतशोभा मुझ पर रहे आप हों मेघ रूप,
"माभूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ।"

(अतएव हे नाथ शीघ्र मेरे साथ अपने नगर की ओर चलिये। अपनी राजसत्ता स्वीकार कीजिये। आनन्द और हर्ष से अपने भवनों को उल्लास युक्त कर दीजिए। माता-पिता भी सुख पाएँ-उनका शोक दूर हो। आप मेघ के समान हों और मुझे बिजली की भाँति सुशोभित कीजिये। मेघ और बिजली के इस शुभ संयोग में क्षण भर भी कभी वियोग न हो।)

(१२४)

आँखें खोलीं यति प्रवर ने देख आगे सती को,
बोले स्वामी--"भवविरत हो, नश्य है विश्व सारा।"
दीक्षा द्वारा भ्रम गत हुआ, छा गई दिव्य वाणी,
"केषां न स्यादभिमत-फला प्रार्थनात्युत्तमेषु ।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(यह सब सुनकर योगिराज ने अपनी कृपापूर्ण दृष्टि डालकर रानी को देखा। बोले--यह सारा संसार और इसके परिणाम सब के सब नाशवान हैं; इसलिये इनके मोह में आबद्ध न हो। इस नश्वर संसार से विरक्त होकर अविनाशी की ओर ध्यान लगा। इसके अनन्तर भगवान नेमीनाथ ने रानी को जो उपदेश दिये उनसे रानी का सारा मोहान्धकार नष्ट हो गया। उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। योगीश्वर की दिव्य वाणी रानी के हृदय में छा गयी। सांसारिक पदार्थों के प्रति अवशिष्ट भ्रम भी उसका निर्मूल हो गया। उसे बड़ी शांति मिली। सत्य है, उत्तम पुरुषों के समक्ष की गई प्रार्थना किसे इच्छित फल नहीं देती है।)

(१२५)

योगार्थी हो शिखर पर श्री नेमिस्वामी विराजे,
देवों द्वारा जय ध्वनि हुई राजकन्या सुखी थी।
राजुलदेवी शिवपुर वसी योग में मग्नचित्ता,
"सागानिष्टा नवरतसुखं भोजयामास शशाश्वत।"

(भगवान नेमिनाथ योग में अनुरक्त होकर गिरनार पर्वत पर ही बसे रहे, राजकन्या भी कल्याण मार्ग की पथिक बनकर योग में मग्न चित्त हो गयी। भोग पर योग की इस विजय के हर्ष में देवताओं ने स्वर्ग में जयध्वनि करना प्रारम्भ किया। भगवान नेमीनाथजी और महारानी दोनों अनंत काल के लिए अनंत मुक्ति का शाश्वत सुख भोगने लगे।)

(१२६)

कालीदास प्रवर कवि का मेघदूताभिधान,
ले के चौथा चरण जिसको है किया छन्दबद्ध ।
श्रीमान्नेमीचरित विरचा सांगणस्यांगजन्मा,
"चक्रे काव्यं बुधजन-मनः-प्रीतये विक्रमाख्यः।"

(सांगण के पुत्र विक्रम ने कविकुल मुकुट कालिदास के मेघदूत का चतुर्थ चरण लेकर नेमिचरित्र को छन्दोबद्ध किया है। आशा है कि इस काव्य की रचना से कुछ बुध जनों के मन को आनन्द प्राप्त होगा।)

(१२७)

भाषा में है सरल करने का किया यत्न मैंने,
पाया मासोत्तम नवम है पक्ष है शुद्ध षष्ठी।
आया संवत् ऋतु गंज तथा अर्नविंश प्रमाण,
धर्मार्थी श्री अमरसुत मैं विप्र हूँ लक्ष्मणाख्य ।

(कविवर विक्रम विरचित इस नेमदूत काव्य को हिन्दी में समश्लोकानुवादित करने का मैंने प्रयत्न किया। मैं धर्म की इच्छा रखने वाले विप्र अमरजी का पुत्र लक्ष्मण हूँ। मार्गशीर्ष शुक्ल ६, संवत् १९८६ को यह अनुवाद पूर्ण हुआ। शुभ मस्तु।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री विक्रम-विरचितं नेमिदूतं काव्यम्

(मूल)

(१)

प्राणित्राण-प्रवण-हृदयो बन्धुवर्गं समग्रं,
हित्वा भोगान्सह परिजनैरुग्रसेनात्मजां च ।
श्रीमान्नेमिर्विषयविमुखो मोक्षकामश्चकार,
स्निग्धच्छाया तरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ।

(२)

सा तत्रोच्चैः शिखरिणि समासीनमेनं मुनीशं,
नासा-न्यस्तानिमिष नयनं ध्यान निर्धूतदोषं ।
योगासक्तं सजलजलदश्यामलं राजपुत्री,
वप्रक्रीड़ा-परिणत-गज-प्रेक्षणीयं ददर्श ।

(३)

उद्वीक्ष्यैनं शंममुखरतं मेदुरांभोजनादै-
र्नृत्यत्केकिव्रजमथ नगं प्रोन्मिषन्नीपपुष्पं ।
सा शोकार्त्ता क्षितितलमगात्स्यान्न दुःखं हि नार्याः,
कण्ठाश्लेष-प्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ।

(४)

तां दुःखार्त्तां शिशिर-सलिलासारसारैः समीरै-
राश्वास्यैवं स्फुटित-कुटजामोदमत्तालिनादैः
साध्वीमद्रिःपतिमनुगतो तत्पदन्यास-पूतः
प्रीतः प्रीतिप्रमुख-वचनं स्वागतं व्याजहार ।

(५)

सिद्धेः संगं समभिलषतः प्राणनाथस्य नेमेः
सा तन्वंगी विरहविधुरा तच्छिरोधिष्ठितस्य ।
तत्संमोहाद्द्रुतमनुनयं शैलराजं ययाचे,
कामार्त्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतनाचेतनेषु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६)

साहं दूना मनसिज-शरैर्यादवेशं बभाषे,
रक्षेत्स्वामी शरण गमसौ भूपतीनां तु धर्मः ।
तन्मां स्वामिन्नय भवदधीनां समभ्यर्थये त्वां,
यांचा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ।

(७)

तुंगं शृंगं परिहर गिरेरेहि यावः पुरीं स्वां,
रत्नश्रेणी-रचितभवन-द्योतिताशांतरालां ।
शोभा साम्यं कलयति मनाङ नालका नाथ यस्याः
बाह्योद्यान-स्थितहरशिरश्चन्द्रिका-धौत-हर्म्या ।

(८)

आलोक्यैनं तरलतड़िदाक्रांत-नीलाब्दमालं,
प्रावृट्कालं विततविकसद्यूथिकाजातिजालं ।
अन्तर्जाग्रद्विरह-दहनो जीविताल‍म्बनेऽलं,
न स्यादन्योप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ।

(९)

अस्मादद्रेः प्रसरति मरुत्प्रेरितः प्रौढ़नादै-
र्निन्दानोयं विरहिजनताकर्णजाहं पयोदैः ।
यं पश्यैताः पथिक-वनितांभोजचन्द्रातपाभाः ।
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं वलाकाः ।

(१०)

वीक्ष्याकाशं नवजलधर-श्याममुद्दामकामा,
विर्भावेन व्यथितवपुषो योषिते विव्हलायाः ।
काले कोस्मिन्वद यदुपते जीवितेशादृशेन्यः
सद्यःपातिप्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ।

(११)

शैलप्रस्थे जलदतमसाच्छादिताशांबरेण,
स्निग्ध-श्यामांजनचयरुचा सादिता भिन्नभावाः
यामिन्योऽमूर्विहितवसतेर्वासिराश्चाजनेऽस्मिन्–
संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१२)

तन्मत्वैवं व्रज निजपुरीं द्वारकां सत्सहायैः,
र्गोविन्दाद्यैः सममनुभवासाद्य राज्यं सुखानि ।
कामं तेषां यदुवर पुनः संगमे भाविनी ते
स्नेह-व्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो वाष्पमुष्णम् ।

(१३)

वन्याहारा धृतमुनिजनाचारसाराः सदारा–
यां नाद्यांतेवयसि सुधियः क्षत्रियाः संश्रयंति ।
किं तारुण्ये गिरवरभुवं सेवसे तां तपोभिः
क्षीणः क्षीणः परिलघुं पयः स्रोतसां चोपभुज्य ।

(१४)

कात्र प्रीतिस्तवमगावरे चारुत द्वारकाया
स्त्यक्त्वोद्यानं युवयदुमनोन्मादि यत्रासुरारिः
निर्जित्येन्द्रं ससुरमनयत्पारिजातं द्युलोका
दिङ्नगानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ।

(१५)

यत्प्रागासीदनलविलसद्भूषणाङ्गाभिरामं,
भात्यारोहन्नवघनजलोद्भिन्नवल्ली-चयेन ।
तत्ते नीलोपलतटविभाभिन्नभासाधुनांमं,
बर्हेणेव स्फुरित-रुचिना गोप-वेषस्य विष्णोः ।

(१६)

रम्या हर्म्यैः क्व तव नगरी दुर्गशृंगः क्व चाद्रिः
क्वैतत्काम्यं तव मृदुवपुः क्व व्रतं दुःखचर्यं ।
चित्तग्राह्यं हितमितिवचो मन्यसे चेन्ममालं,
किंचित्पश्चाव्रजलघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ।

(१७)

कुर्वन्पांथांस्त्वरितहृदयान्संगमायांगनाना–
मेनं पश्याधिगतसमयः स्ववयस्यं मयूरं ।
जीमूतोऽयं मदयति विमोकोथवान्योपि काले,
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१८)

पूर्वं येन त्वमसि वयसा भूषितोऽगे समग्रे,
तैस्तैः क्रीड़ारससुखसखैर्भव्यंभोगैरिदानीं ।
तत् तारुण्यं सफलयपुरीं दारकामेत्य शीघ्रं,
सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु ।

(१९)

किं शैलेस्मिस्तत्र निवसतो न व्यथा कापि चित्ते
संत्यज्य स्वां पुरमनुपमां द्योतते नाथ यस्याः ।
त्वत्सौधेनासित-मणिमयाग्रेण हैमोग्र वप्रो,
मेघश्यामस्तनइव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ।

(२०)

यामालोक्य स्वगृह-गमनायोत्सुकाः स्युस्त्वदन्ये,
पश्याकाशे जलदपटलेऽस्मिन्बलाकावलीं तां ।
अन्तर्विद्युत्स्फुरित-रुचिरे सुप्रकाशेन्द्र चापे,
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमंगे गजस्य ।

(२१)

युक्ता लक्ष्म्या मुदितमनसो यादवेशाः सभाया–
मासीनं यं निजपुरि चिरं त्वामसेवंत पूर्वं ।
मं प्रत्येकः श्रयसि स नगं नाथ किं वेत्सि नैवं,
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ।

(२२)

मुक्तातंकास्तव यदुविभो जिव्हयांगं लिहंतः,
संक्रीड़ंते शिशव इवयें के समाधिस्थितस्य ।
संप्रत्येते पुरमभियतो विप्रयोगेण नेत्रैः
सारंगास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गं ।

(२३)

एतत्तुंगं त्यज शिखरिणः शृंगमंगीकुरुष्व,
प्राज्यं राज्यं प्रणयमखिलं पालयन्बन्धुवर्गं ।
रम्ये हर्म्ये चिरनुभव प्राप्यभोगानखण्डान्,
सोत्कण्ठानि प्रिय सहचरी-संभ्रमालिंगितानि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२४)

धूतोन्निद्रार्जुन-परिमलोद्‌गारिण: पांथ सार्धा-
न्ये कुर्वीरन् जलदमरुतो वेश्म संदर्शनोत्कान् ।
तैं संस्पृष्टो विरहिहृदयोन्माथिभि: स्वां पुरींनु,
प्रत्युद्यात: कथमपि भवान्गन्तुमाशु व्यवस्येत् ।

(२५)

नोत्साहस्ते स्वपुरगमने चेद्वियुक्ता त्वयाहं,
वृद्धावेतौ तव च पितरौ त्वज्जनास्ते त्रयोमी
म्लानास्याब्जा कलुषतनवो ग्रीष्मतोयाशयाभा:,
सम्पत्स्यन्ते कतिपय-दिनस्थायि-हंसा दशार्णा:

(२६)

तन्न: प्राणानव तव मते जीवरक्षैव धर्मो,
वासार्थं व: सु-विरचितां तां पुरीमेहि यस्या: ।
वप्रप्रान्ते स्फुरति जलधेर्हारिवेला रमण्या:,
सभ्रूभंगं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि ।

(२७)

अस्मादद्रे प्रतिपथमघ: संचरन्दानवारे:
क्रीड़ाशैलं विमलमणिभिर्भासुरं द्रक्षसि त्वं ।
अन्त:कांतारतरुसगलद्‌भूपर्णैर्यो यदूना–
मुद्दामानि प्रथयतिशिलावेश्मभियौं वनानि ।

(२८)

तस्योद्याने वरतरुचिते त्वं मुहूर्त्तं श्रमार्त्त–
स्तिष्ठेंस्तुष्टो विविधतदुपानीतपुष्पोहारैः ।
पुष्णंन्नश्चर परिमलोद्‌गारसारस्मितानां
छायादानक्षण-परिचित: पुष्पलावीमुखानाम् ।

(२९)

दृष्ट्वा रूपं तव निरुपमं तत्र पीनस्तनीनांम्
तासामंतर्मनसिजरसोल्लासलीलालसानां ।
कर्णांभोजोपगतमधुकृत्संभ्रमोद्यद्विलासैः
लोलापांगैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३०)

तस्मिन्नुद्यन्मनसिजरसाः प्रांशुशाखावनाम–
व्याजादाविष्कृत-कुचवली-नाभिकांचीकलाभाः
संधास्यन्ते त्वयि मृगदृशस्तान्विचित्रान्विलासान्–
स्त्रीणामाद्यं प्रणय-वचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ।

(३१)

त्वां याचेऽहं न नयविदुषां क्वापि कार्ये विलम्बो,
गंतव्या ते संपदि नगरी स्वायतः सा त्वदम्बा ।
मुक्ताहारा सजलनयना त्वद्वियोगार्ति-दीना
कार्श्यं येन त्यजति विधिना सत्वयैवोपपाद्यः ।

(३२)

तस्याधस्ताद्विषमपुलिनाँ स्वर्ण रेखामतीतो,
मार्गे दृष्ट्वा पुरमनुपमं तां भवान्वामनस्य ।
भुक्त्वा लोकोपचयमवनिं नाकिनामागतानाम्
शेषैर्पुण्यैर्हृतमिव दिवःकान्तिमत्खण्डमेकं ।

(३३)

यस्यां सान्द्रोनुपमचलितो वेश्मसु स्वेच्छयैवं,
उष्णंन्नगात्सुरतललितादुज्जयंती विगाह्य ।
स्वेदे तीरे विदलितपुटः सेवते वारनारिं,
सिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थना-चाटुकारः ।

(३४)

यत्र स्तंभान्मरकतमयान्देहलीं विद्रुमाणां,
प्रासादाग्रं विविधमणिभिर्निर्मितं वांसवेन ।
भूमिं मुक्ता-प्रकर-रचितां हास्तिकं चापि दृष्ट्वा,
संलक्ष्यंते सलिलनिधयः स्तोय-मात्रावशेषाः ।

(३५)

अत्रात्युग्रैः किल मुनिवरो वामनः प्राक्तपोभिः ।
लब्ध्वा सिद्धिं निखिल-भुवनव्यापिना विग्रहेण ।
ईशं वामं भुजग-सदने प्रापयद्दानवाना–
मित्यागंतून्रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३६)

तामासाद्य प्रवर-नगरीं विश्रुतां संनिवासं,
कुर्याः पौरैं नृवर विहितानेक-पूजोपचाराः
आस्तीर्णान्तर्विमल-शयनेष्वग्र-सौधेषु कामं,
नीत्वा खेदं ललितवनितापादरागांकितेषु ।

(३७)

उद्यानानामुपतट भुवामुज्जयन्त्याः समंता–
दाधुन्वद्भिर्विपुलविकसन्मालती-जालकानि ।
अंगान्मार्ग-श्रमजलकणान्सेव्यसेऽस्यां हरद्भि–
स्तोय-क्रीड़ा-निरतयुवति-स्नान-तिक्तैर्मरुद्भिः

(३८)

तत्रोपास्यः प्रथितमहिमा नाथ देवस्त्वया यः
प्रासादस्थः क्षणमनुपमं यं निरीक्ष्य त्वमक्ष्णोः
शृण्वन्प्रेक्षामुरजनिनदान्वारिवाहस्य तुल्या–
नामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ।

(३९)

त्वद्रूपेणापहृत-मनसो विस्मयात्पौरनार्यः
सौन्दर्याधःकृतमनसिजे राजमार्ग प्रयाति ।
प्रातस्तस्यां कुवलयदलश्यामलांगे सलील–
मामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षान् ।

(४०)

तस्यापश्यन्वरगृहततिं तां व्रजेर्यां स्पृशंती–
मैक्यप्राप्यासितरजनिषु प्रस्फुरद्रत्नदीपाः
विद्योतंते निहततिमिरव्योममार्गश्च लोके,
शान्तोद्वेगस्तिमितनयने दृष्ट भक्तिर्भवान्या ।

(४१)

पौरैस्तस्यां रथमुपहृतं रम्यमास्थाय यांतं,
द्रष्टुं ग्राम्याः पथि युवतयस्त्वामुपेष्यंति तस्मात् ।
शब्दैस्तत्र स्खलदुपलजैर्रथिसार्थीकृतश्री
स्तोयोत्सर्गस्तनित-मुखरो मास्मभूर्विक्लवास्ताः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४२)

त्वामायांतं पथि यदुवराः केशवाद्या निशम्य,
प्रीताबन्धूस्तव पितृमुखान्सौहृदान्नंदयंतः
साकं सैन्यै रथमभिमुखं प्रेषयिष्यन्ति तूर्णं,
मंदायंते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ।

(४३)

श्रुत्वा तीरे तदनु जलधेरागतं सापहारं,
मान्यो मंत्री यदि बलपुराच्छीरिणस्तामुपेतः ।
तस्यादेया स्वशयविहिता सत्क्रिया तेन वेत्सि,
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधिस्यादनल्पाभ्यसूयः ।

(४४)

गच्छेर्वेलातटमनु ततस्तोयमुल्लासिमत्स्यं,
स्वच्छं काचच्छवि जलनिधेस्तस्य पश्यन्रथस्थः
यः कामीव क्षणमपि सरित्कामिनीनां न शक्तो,
मोधीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि ।

(४५)

तां वेलांके विमलसलिलामागतां द्रक्षसि त्वं,
पूर्वोद्दिष्टां सरितमसकृद्वारिभिर्वीचिहस्तैः
यामालिंग्यो परमतिपर्यन्यन्मुखं न क्षणार्धं
ज्ञातास्वादो विपुलजघनां को विहातुं समर्थः ।

(४६)

तस्मिन्नुच्चैर्दलित-लहरी-सीकरा-सार-हारी,
वारां राशेस्तटजविकसत्केतकामोदरम्यः ।
स्वेदं मार्गक्रमणजनितं ते हरिष्यत्यजस्रं,
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुंबराणां ।

(४७)

नाम्ना रत्नाकरमथ पुरस्ताद्व्रजेर्वीक्षमाणो,
जज्ञे यस्माद्भुवनभयकृत्तत्पुरा कालकूटं ।
यत्रासाध्यं निवसति जगद्दाहदक्षं जलाना–
मत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धि तेजः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४८)

त्वामायांतं तटवनचरा मेघनीलं मयूरा
दृष्ट्वा दूरान्मधुरविरुतैस्तत्र ये संस्तुवन्ति ।
खं तान्दिव्यध्वनिभिरुदधेः सांद्रितैः संनिकृष्टः
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः ।

(४९)

उत्कल्लोला विपुलपुलिनाग्रेऽथ भद्राभिधाना,
सा ते सिन्धुर्नयन विषयं यास्यति प्रस्थितस्य ।
वातोद्धूतैः हँसति सलिलैर्या शशांकांशु गौरैः
स्रोतो मूर्त्या भुवि परिणता रंतिदेवस्य कीर्त्तिम् ।

(५०)

उच्चैर्भिन्नं जनितमुदधौ हरिनीरं रथस्थे,
तस्यास्त्वय्युत्तरति सरितो यादवेन्द्र प्रवाहं ।
वीक्षिष्यन्ते क्षणमनिमिषाव्योमभाज्योति दूरा-
देकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलं ।

(२१)

तामुत्तीर्णः पुनरधिवसेरीश पौराभिधानं,
नानादेशागतजनचयैः पूर्णरम्यापणं तत् ।
यस्याकाशं स्पृशति निवहो, वेश्मनामूर्ध्वभागात्
पात्री कुर्वन्दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ।

(५२)

तस्माद्वर्त्मानिद्य तव कियद् गच्छतो भाति दुर्गं,
पंकाकीर्णं नवतृणचितं तत्रतोयाशयानां ।
कर्वन्नब्दः किल कलुषतां मार्गणैः प्रागरीणां,
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यर्षिचन्मुखानि ।

(५३)

नानारत्नोपचितशिखरश्रेणिरम्यः पुरस्तै,
यास्यत्यक्ष्णोर्विषयमचलो मादनो गन्ध पूर्वः
यं सोत्कण्ठो नवमिव पुनर्वीक्षितुं कांत हर्षात्
अन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५४)

यस्मिन्पूर्वं किल विरचितां वाम-भागे भवानीं,
देवीं वीक्ष्य त्रिपुरजयिनः स्वेच्छया केलिभाजं ।
जन्होः पुत्री तदनु दधतां केऽभ्युपेर्ष्यं सपत्नी,
शंभोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ।

(५५)

आरूढ़स्य स्फटिकमणिभूश्वेत-सानुप्रपाते,
यस्मिन्शैले विमलविलसत्कांतितोयप्रवाहा,
संक्रामंत्या तव घनरुचा छायया स्वर्धुनीव,
स्यादस्थानोपगतयमुना-संगमेवाभिरामा ।

(५६)

भास्वद्भास्वन्मणिमय बृहत्तुंगशृंगाग्रसंस्थाः
सम्पत्युद्यत्परिणतफलश्यामला वामभागे ।
यस्मिन्जम्बुक्षितिरुहचया धारयिष्यंति सान्द्रा,
शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपंकोपमेयाम् ।

(५७)

श्रुत्वा यांतं द्रुतमुपगतास्तत्र वंदिव्रजा ये,
त्वां यावंतः प्रथित यशसं येऽर्थिनो दौःस्थ्यदीनाः ।
तान्कुर्वीथाः समभिलषितार्थप्रदानैः कृतार्था–
नापन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ।

(५८)

आकर्ण्याद्रिप्रतिरवगुरुं वानरास्त्वत्सकाशे,
क्रोधाताम्रास्ततमुखरवं तत्र येऽभिद्रवन्ति ।
तान्योधानां विमुखय पुनर्दारुणैर्ज्या निनादैः
के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारंभयत्नाः ।

(५९)

तस्मिन्नद्रौ निवसति विभुः स स्वयंभूर्भवो वा,
देवः सेवा-परसुरगणैर्वन्द्यपादारविन्दः ।
युद्धानेनापहृतदुरिता मानवाः पुण्यभाजः
संकल्पंते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६०)

नीपामादोन्मद मधुकरं गुंजनं गीतरम्यं,
केका वेणुक्वचितमधुरा बर्हिणां चारुनृत्यं ।
श्रोत्रानंदी मुरजनिनदस्त्वत्प्रयाणे यदि स्यात्,
संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः ।

(६१)

तस्माद् गच्छन्नथ पथि भवान्वीक्षिता वेणुनाख्यं
शैलं नीलोत्पलरस्विग्धशेषसानूच्छ्रयं तं ।
व्याप्याकाशं नवजलभृतां सन्निभो यो विभाति
श्यामः पादो बलिनियमनाद्योतस्येव विष्णोः ।

(६२)

तांस्तान्ग्रामानपि शुचिगिरिं दक्षिणेन व्यतीत्य,
दृष्टास्यग्रे सितमणिमयं सौधसंघं स्वपुर्यां ।
क्रान्त्वा वप्रं वियति विशदैः शोभते योंऽशुजालै–
राशीभूतः प्रतिदिशमिव त्र्यम्वकस्याट्टहासः ।

(६३)

प्रत्यासत्ति विशदशिखरोत्संगभागे पयोदे,
नील-स्निग्धे क्षणमुपगते पुण्डरीक-प्रभस्य ।
शोभा काचिद्विलसति मनोहारिणी यस्य संपत्,
यं सन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ।

(६४)

प्राप्योद्यानं पुरपरिसरे केलिशैले यदूनां,
विश्रामार्थं क्षणमभिरतिं गोमती-वारि पश्यन् ।
उत्सर्पद्भिर्दधदिव दिवोवर्त्मनो वाजिसंघैः
सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणायाग्रयायी ।

(६५)

तत्रासीनो मुररिपुयशोनिश्चलः किन्नरीभिः
शृण्वंस्तिष्ठञ्छ्रुतिसुखकरं गीयमानं मुहूर्त्तम् ।
शब्दैरश्वस्खलितरवजैर्मेदुरैरम्बुराशेः
क्रीड़ालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भीषयेस्ताः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६६)

सान्द्रोन्निद्रार्जुन-सुरभितं प्रोन्मिषत्केतकीकं,
हृद्यं जातिप्रसव-रजसां स्वादमत्तालिनादैः ।
नृत्यत्केका-मुखर-शिखिनं भूषितोपांत-भूमिं,
नानाचेष्टैर्जलदललितैर्निर्विशेस्तं नगेंद्रं ।

(६७)

तस्या हर्म्यादवक्रुतमहास्ते प्रदेशाय पुर्या,
निर्यास्यंति प्रवरयदवः संमुखाः शौरिमुख्याः ।
या कालेस्मिन्भवनशिखरै प्रक्षरद्वारिधत्ते,
मुक्ताजाल-ग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दं ।

(६८)

शश्वत्सांद्र-स्वतनुमहसं प्रोल्लसद्रत्नदीपा,
मान-प्रांशु शिखरनिवहै व्योमिमार्गं स्पृशंतः ।
गौरं ज्योत्स्ना-विमल-यशसा शुभ्रवर्णाः सुधाभिः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ।

(६९)

यामुद्दामाखिल-सुररिपून्माथिनो दानवारेः
साहाय्याय प्रथितमहसोऽध्यासते योधवर्याः ।
नानादैत्यप्रहरणभवैः संगरेषु स्वकीर्त्या,
प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणांकैः ।

(७०)

व्याधिर्देहान्स्पृशति न भयाद्रक्षितुः शार्ङ्गपाणेः,
मृत्योर्वार्ता श्रवणपथगा कुत्र यद्वासभाजां ।
काम-क्रीड़ारससुखजुषां यच्छतामर्थिकामा–
न्वित्तेशानां न च खलु वयो वनादन्यदस्ति ।

(७१)

कर्णे जाति-प्रसवममलं कैतकं केशपाशे,
कस्तूरीभिः कृतविरचना गंडयोः पत्रवल्ली ।
कण्ठे माला ग्रथितकुटजा मंडनं भावि काम्यं
सीमंते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७२)

यस्यां रम्यं युवजन-मनोहारि वारांगनानाम्,
लास्यं तालानुगतकरणं भास्यति त्वत्प्रवेशे।
वांछंतीनां तदवगमनादंगभाजां प्रसादं
त्वद्गंभीर ध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु।

(७३)

संसक्तानां नवरतरसे कामिभिः कुंठ्यमानाः
पृष्ठेऽध्वन्तःकृतविरचना धर्मवार्यङ्गनानाम्।
यस्यां ग्रीष्मे शिशिरकिरणस्यांशुभिर्यामिनीषु
व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः।

(७४)

गत्वा पूर्वं रजनिसमये धूप्यमानेषु लीला,
वेश्मस्वन्तर्युवतिनिहितैर्रत्नदीपैर्निरस्ताः
जालैर्यन्त्राद्यतमरुचयाः साध्वसेनेव भूयो,
धूमोद्गारानुकृति निपुणा जर्जरा निष्पतन्ति।

(७५)

रात्रौ यस्यामुपसखभृशं गात्रसंकोचभाजां,
रागेणान्धैः शयनभवनेषूल्लसद्दीपवत्सु।
प्रेम्णा कान्तैरभिकुचयुगं हृद्यगंधिर्वधूनां,
ही मूढ़ानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः।

(७६)

गायन्तीभिस्त्वदमलयशो वारसीमन्तिनीभिः
साकं माद्यन्मधुरमुरजं तारसारान्यपुष्टं।
यस्यां रम्यं सुरभिसमये सोत्सवाः सीरिमुख्या,
वद्धापानं वहिरुपवनं कामिनो निर्विशंति।

(७७)

उद्यत्कामालस्सयुवतिभिः सेव्यमानैः सरोज—
स्कन्धान्यस्यां सुमधुररसानक्षजानापिवद्भिः
निर्गम्यन्ते शरदि यदुभिः सद्मपृष्टे स्वकीर्त्या,
नित्यज्योत्स्नाप्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७८)

कान्तोत्तंसास्तुहिनसमये कुंकुमालिप्तदेहाः
सान्द्रे च्छाये शुचिनि तरुभिः गोमती रम्यतीरे ।
रूपोल्लासा विजितरतयः कुन्दकाले सलीलं,
संक्रीडंते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः ।

(७९)

यस्यां पुष्पोपचयममलं भूषणं साधु हृद्यं,
गन्धद्रव्यं व्यजननिवहं सूक्ष्ममिच्छानुकूलं ।
न्यस्त प्रीत्या त्रिदशपतिना वासुदेवस्य सद्म-
न्येकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ।

(८०)

एषां काश्मावनिषु शिशिरैः कुंकुमार्द्रैः पदांकैः,
शीतोत्कम्पाद्गतिविगलितैर्वालकैः केशपाशात् ।
भ्रष्टैः पीनस्तनपरिलसद्रम्यमाल्यैश्चयस्यां,
नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ।

(८१)

वाणस्याजौ हरविजयिनो वासुदेवस्य यस्यां,
प्राप्यासत्तिं चरति गतभीः पुष्पचापो निरस्तः
यस्माद्वेछाकृतयुवमनो मोहमात्मप्रकर्षैः
तस्यारंभश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः ।

(८२)

यायास्तस्माद्रथपरिकृतस्त्वं प्रवेशाय यस्यां,
तत्प्राचीनं पुरि हरिमुखैर्गोपुरं यादवेन्द्रैः ।
यत्राशोकः कलयति नवस्तोरणाभां तथान्यो,
हस्तप्राप्यस्तबकनमितो बालमन्दारवृक्षः ।

(८३)

उद्यद्बाल-व्यजनमनिलोल्लासिकाश-प्रसूनाः
श्वेतच्छत्रं विकसितसिताम्भोजभाजो विलोक्य ।
तस्यापौरा विशदयशसं न श्रियः शारदीना,
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८४)

पुष्पाकीर्णं पुरि सह तदा यस्त्वयो राजमार्गं,
यास्यत्युद्यद्धनिजवसनं चन्दनांभश्छटाकं ।
शौरिं पीताम्बरधरमनुक्ष्माधरं मेघमेनं,
प्रेक्ष्योपान्त स्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि ।

(८५)

यातं तस्याः पुरि पुरि बलादुत्सवैः कामिनोत्कं,
हर्षोत्कर्षं नरपति पथे नैष्यत स्तौययोस्तु ।
स्त्रीणामेको रमयतिशतान्यंगनां पाययित्वा,
कांक्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहृदच्छद्मनास्याः ।

(८६)

सौधश्रेणीर्विततविलसत्तोरणास्ता व्यतीत्य,
स्वावासं तं मणिचयरुचा भासुरं प्राप्स्यसि त्वं ।
यस्मिन् कस्मै न भवति मुदे साग्रभूमिर्धनानां,
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः ।

(८७)

नत्वा पूर्वं पितृमुखगुरूंस्तान्विसृज्याथ बन्धून्,
सौधं मंचद्वयमपि ततोऽलं कुरुष्वार्द्रचित्तः ।
यन्निःश्रीकं हरति न मनस्त्वां विना यादवेन्द्रो,
सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्यां ।

(८८)

इत्युक्तेऽस्या वदसि विमुखं मुक्तिकान्तानुरक्तं,
दृष्ट्वा नेमिं किल जलधरः सन्निधौ भूधरस्थः ।
तत्कारुण्यादिव जलधरः श्रेणिमुक्ताश्रु धत्ते,
खद्योतालीविलसिततनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टि ।

(८९)

तत्सख्यूचे तमभिवचनं वांछितं साधयास्या,
बालामेनां नय निजगृहं शैलशृंगं विहाय ।
त्वत्संयोगान्ननु धृतिसमेतानवद्यांग यष्टि–
र्या तित्रस्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(९०)

अस्वीकारात्सुभग भवतः क्लिष्टशोभां कियद्भि–
र्मृद्वीमंतर्विरहशिखिना वासरैर्दह्यमानां ।
एनां शुष्यद्वदनकमलां दूरविध्वस्त-पत्रां,
जातां मन्ये तुहिनमथितां पद्मिनीवान्यरूपां ।

(९१)

आकांक्षंत्या मृदुकरपरिष्वंगसौख्यानि सख्याः,
पश्यामुष्या मुखमनुदिनं म्लानमस्मेरमश्रि ।
उद्यत्तारात्कुमुदमिव ते कैरविन्या वियोगा–
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्त्ति ।

(९२)

शय्योत्संगे निशि पितृगृहे प्राप्य निद्रां पुरासौ,
त्वं क्व स्वामिन्व्रजसि सहसेति ब्रुवाणा प्रवुद्धा ।
ऊचेस्माभिर्न खलु नयनेनापि वो वीक्षितांगः
कच्छिद्भर्त्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ।

(९३)

एतदुःखापनयरसिके प्राक्सखीनां समाजं,
नायत्यासां किमपि मधुरं गीतमादाय वीणां ।
तद्ध्यानेनापहृतहृदया गातुकामा ललज्जे,
भूयो भूयः स्वयमपिकृतां मूर्च्छनां विस्मरंती ।

(९४)

त्वत्प्राप्त्यर्थं विरचितवती तत्र सौभाग्यदेव्याः
पूजामेषा सुरभिकुसुमैरेकचित्ता मुहूर्त्तं ।
दैवज्ञान्वा नयति निपुणान्स्म क्षणं भावयन्ती,
प्रायेणैते रमणविरहेष्वंगनानां विनोदाः

(९५)

याते पाणिग्रहणसमयेऽद्रिं विहाय त्वयीमां,
त्यक्त्वा माल्यं सपदिरचितायानया विप्रयोगे ।
तामेवैषा वहति शिरसा वा खे निधाय प्रदेशे,
गंडाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(९६)

गीताद्यैर्वा श्रुतिसुखकरैः प्रस्तुतैर्वा विनोदैः
पौराणीभिः कृतनुतिमिमां त्वद्वियोगात्कथाभिः ।
तुष्टिं नेतु रजनिषु पुनर्नालिवर्गः क्षमोऽभूत्
तामुन्निद्रामवनिशयनां सौधवातायनस्थः ।

(९७)

या प्रागस्याः क्षणमिव नवैर्गीतवार्ताविनोदैः,
आसीच्छैयातलविगलितैर्गल्लभागैर्विलंघ्य ।
रात्रिं संवत्सरशतसमां वीक्ष्यते सन्नगात्री ।
तामेवोष्णैर्विरहजनितैरश्रुभिर्यापयन्ती ।

(९८)

पश्यन्ती त्वन्मयमिव जगन्मोहनावासमग्नं,
ध्यायंती त्वां मनसि निहितं तत्क्षणं तद्विरामे ।
मूर्त्तिं भित्तावपि च लिखितामीक्षितुं ते पुरस्ता–
दाकांक्षन्ती नयनसलिलोत्पीड़रुद्धावकाशं ।

(९९)

अन्तर्भिन्ना मनसिजशरैर्मीलिताक्षी मुहूर्त्तं,
लब्ध्वा संज्ञां दिशि दिशि मुहुर्वीक्ष्यमाणार्त्तिदीनां,
शय्योत्संगे नवकिसलयाग्रेऽपि भद्रं न लेभे,
साभ्रेन्हीव स्थलकमलिनी न प्रबुद्धा न सुप्ता ।

(१००)

वृत्तान्तेऽस्मिस्तदनु कथिते मातुरस्यास्तयेतत् ।
वृत्तं ज्ञातं निशि सह मया प्रेपितः सौविदल्लः ।
सख्याः पश्यन्नयमपि दशां तां तदा वेक्ष्य जातं,
प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद् भ्रातरुक्तं मया यत् ।

(१०१)

प्रेक्ष्यैतस्मिन्नपि मृगदृशस्तावस्थामसह्यां,
अस्याः प्रातः कथयति पुरा विस्तरात्सैतदम्बा ।
श्रुत्वा दुःखं दुहितुरसृजद्बाष्पमच्छिन्नधारं,
प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१०२)

आहूयैनामवददथ सा निर्दयोयोऽत्यजत्त्वा-
मित्थं भद्रे कथय किमियद्धार्यते तत्र दुःखं ।
त्यक्त्वा लोलं नयनयुगलं तेऽरुणत्वं रुदत्या,
मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ।

(१०३)

अन्तस्ताम्पान्मृदुभुज-युगं ते मृणालस्य दैन्यं,
म्लानिं चैतन्मिहिरकिरणक्लिष्टशोभस्य धत्ते ।
प्लुष्टः श्वासैर्विरहशिखिना सद्वितीयस्तवायं
यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तंभगौरश्चलत्वं ।

(१०४)

वत्से ! शोकं त्यज सृज पुनः स्वच्छतां मृष्टवाणीं,
यस्यस्वैवं प्रयतमनसानुग्रहं मे कुरुष्व ।
भर्तुर्भूयो न भवति रहः संगतायास्तथा ते
सद्यः कंठच्युतभुजलताग्रंथिगाढ़ोपगूढ़ं ।

(१०५)

आरोप्यांके मधुरवचसा श्वासितेत्थं जनन्या,
तत्याजाधिं क्षणमपि न या त्वद्वियोगात्कृशांगी ।
संप्रत्येषा विसृजति तनु कोमलांगी यथा नो,
वक्तुं धीरस्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः ।

(१०६)

मातुः शिक्षाशतमवज्ञाय दुःखं नखीना-
मन्तश्चित्तेष्वजन यदि यं पाणिपंकेरूहाणि ।
हस्ताभ्यां प्राक्सपदि रुदती रुंधती कोमलाभ्यां,
मन्दस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ।

(१०७)

वृद्धः साध्व्यः सुभग तव यः प्रेषितोऽभूत्प्रवृत्ति,
ज्ञातुं तस्मात्कुशलिनमियं रैवताद्रौ द्विजातिः ।
त्वामाकर्ण्योच्छ्वसितहृदयासीत्क्षणं सुन्दरीणां,
कान्तो दन्तः सुहृदुपगतः संगमात्किंचिदूनः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१०८)

इत्थं कृच्छ्राद्विधुर वपुषो वासरान्वर्षतुल्या,
नस्याः सख्या जनकसदने त्वद्वियोगान् नयंत्याः ।
अन्तश्चित्ते त्वयि सुखलवो न प्रपेदे प्रवेशं
संकल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः

(१०९)

प्राप्यानुज्ञामथ पितुरियं त्वां सहास्माभिरस्मिन्
संप्रत्यद्रौ शरणमबला प्राणनाथं प्रपन्ना ।
अर्हस्येनां विषमविशिखाद्रक्षितुं त्वं हि कृच्छ्रात्
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ।

(११०)

धर्मज्ञस्त्वं यदि सहचरीमेकचित्तां च रक्तां,
किं मामेवं विरहशिखिनोपेक्ष्यसे दह्यमानां ।
तत्स्वीकारात्कुरु मयि कृपां यादवाधीश बाला,
त्वामुत्कंठाविरचितपदं मन्मुखे नेदमाह ।

(१११)

दुर्लंघ्य त्वं शिखरिणि पयोधौ च गांभीर्यमुर्व्यां,
स्थैर्यं तेजः शिखिनि मदने रूपसौन्दर्यलक्ष्मीं ।
बुद्धिं, क्षान्ति नृवर कलया गीतवृन्दं गुणानां,
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि च ते चण्डि सादृश्यमस्ति ।

(११२)

एतानीत्थं विधुरमनसा स्वीकृतायास्त्वया मे,
दुःखार्त्तायाः क्षितिभृति दिनानीशकल्पोपमानि ।
आसन्नस्मिन्मदन-दहनोद्दीपकानि प्रकाशं,
दिक्संसक्तप्रविरलघनव्यस्तसूर्यातपाभि ।

(११३)

रात्रौ निद्रां कथमपि चिरात्प्राप्य यावद्भवन्तं,
लब्धं स्वप्ने प्रणयवचनैः किंचिदिच्छामि वक्तुं ।
तावत्तस्या भवति दुरितैः प्राक्तनैर्मे विरामः
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(११४)

मन्नाथेन ध्रुवमवजितो रूपलक्ष्म्या तपोभिः
तद्वैरान्मामिबुभिरवलां हन्त्यशक्तो मनोभूः ।
दृग्भ्यां क्लृप्तेष्विति मम निशिस्रस्तरे चिन्तयंत्या,
मुक्तास्थूलास्तरु-किसलयेष्वश्रुलेशाः पतंति ।

(११५)

अस्तिन्नेते शिखरिणि मया यादवेशांतिकांते,
जीमूताम्भःकणचयमुपः संचरंतः पुरस्तात् ।
संसेव्यन्ते विषमविशिखोत्तंसया नीपवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदंगमेभिस्तवेति ।

(११६)

संचिन्त्यैवं हृदि मयि दयां धारयंस्तत्प्रसीद,
स्वामिन्निर्वापय वपुरिदं स्वांगसंगामृतेन ।
यत्संताप्यानिशमतितरां प्राणलावण्यशेष,
गाढ़ोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ।

(११७)

दुःखं येनानवधि बुभुजे त्वद्वियोगादिदानीं
संयोगात्तेऽनुभवतु सुखं तद्वपुर्मे चिराय ।
यस्माज्जन्मांतरविरचितैः कर्मभिः प्राणभाजां,
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।

(११८)

प्रावृट्प्रांतप्रियतमगता दुर्दशा दुःखदेव,
प्रायोन्योन्यैँरतिकरमितः साम्प्रतं संगमाय ।
भो गाने कोत्सवमुख सुखानिच्छया मन्दिरे स्वे,
निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ।

(११९)

इत्येतस्याः सफलय चिराद्वाक्यमासाद्य सद्यः
स्वं वेश्मैनां नय नवरसैः स्वस्थचित्तां कुरुष्व ।
तल्पे प्राक्त्वां निशि वदति या, स्मेक्षमाणेव मोक्षात्–
दृष्टः स्वप्ने कितव रमयन् कामपि त्वं मयेति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१२०)

त्वत्संयोगाकुलितहृदयोत्कंठया राजपुत्री.
त्वामेषा च त्वरयति चिरात्स्नेहपूर्णा प्रयातु
प्रायेणैता: प्रियजनमनोवृत्तयोऽप्राप्तिभावा–
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसा: प्रेमराशीभवंति ।

(१२१)

तस्माद्बालां स्मरशर-चयैर्दु:सहैर्जर्जरांगी,
संभाष्यैनां नय निजगृहान्सत्वरं यादवेन्द्र ।
प्रीत्या चास्या मधुरवचनाश्वासनाभि: प्रयंतां,
प्रात: कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथा: ।

(१२२)

त्वामर्थैस्या किमिति नितरां प्रार्थये नाथ भूयो,
यस्मादीदृग्जगति महतां लक्षणं सुप्रसिद्धम् ।
स्नेहादेते न खलु मुखरा याचिता: संभवंति,
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ।

(१२३)

गत्वा शीघ्रं स्वपुरमतुलं प्राप्य राज्यं त्रिलोक्या:
कीर्त्तिं वितनु सुहृदां पूरयाशां च पित्रो: ।
राजीमत्या सह नवघनस्येव वर्षासु भूयो,
मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोग: ।

(१२४)

तत्सख्योक्ते वचसि सदयस्तां सतीमेकचित्ता,
संबोध्येश: सभवविरतो रम्यधर्मोपदेशै:,
चक्रे योगान्निजसहचरीं मोक्षसौख्याप्तिहेतो:
केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ।

(१२५)

श्रीमान्योगादचल-शिखरे केवलज्ञानमस्मिन्
नेमिर्देवोरग-नरगणै: स्तूयमानोऽधिगम्य ।
तामानंदं शिवपुरि परित्यज्य संसारभाजां,
भोगानिष्टानविरतसुखं भोजयामास शश्वत् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१२६)

तद्दु:खार्थं प्रवरकवितुः कालिदासस्य काव्यात्
अंत्यं पादं सुपदरचितान्मेघदूताद् गृहीत्वा ।
श्रीमन्नेमेश्चरितविशदं सांगणस्यांगजन्मा,
चक्रे काव्यं बुधजनमनप्रीतये विक्रमाख्यः ।

इति सांगण सूनुश्री विक्रम कवि विरचितं नेमीदूतं काव्यं समाप्तम्

2260

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi